जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मदिर में उपयोग हेतु उपकरण और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है !

शुध्द चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किये जातें है!

(पांडुशिला, सिंघासन ,छत्र ,चंवर प्रातिहार्य , जापमाला , मंगल कलश,पूजा बर्तन चंदोवा,तोरण,झारी)

नोट :- हमारे यहाँ घरो मे उपयोग हेतु , साधुओं के उपयोग हेतु, अनुष्ठानो मे उपयोग हेतु शुध्द देशी घी भी आर्डर पर उपलब्ध कराया जाता है !

Contact:-
Sourabh Sagar Indore
9993602663
7722983010
sourabhjn1989@gmail.com

जैन

जय जिनेन्द्र

गाय का शुद्ध देशी घी

शुद्धता पूर्वक बनाया गया देशी घी

साधु व्रती एवं धार्मिक अनुष्ठानो को ध्यान में
रख कर बनाया गया शुद्ध देशी घी

घी ऐसा के दिल जीत जाये !

अब 1kg की पैकिंग में भी उपलब्ध

संपर्क सूत्र

Contact For Order

Sourabh Sagar Indore

Call & Whatsapp:

9993602663,7722983010

All India Home Delivery

भट्टारक श्री सकलकीर्तिजी विरचित

संस्कृतसे हिन्दी भाषामें अनुवादकर्ता—

स्व० पं० उदयलाल कासलीवाल (बडनगर)

प्रकाशक।

शैलेश डाह्याभाई कापड़िया
दिगम्बर जैन पुस्तकालय,
खपाटीया चकला, गांधीचौक सूरत–३

"जैन विजय" प्रिन्टिंग प्रेस, सूरतमें शैलेश डाह्याभाई कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य १०-००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भट्टारक श्री सकलकीर्तिजी विरचित

श्री धन्यकुमार चरित्र

संस्कृतसे हिन्दी भाषामें अनुवादकर्ता—

स्व० पं० उदयलाल कासलीवाल (बडनगर)

प्रकाशक :

शैलेश डाह्याभाई कापड़िया

दिगम्बर जैन पुस्तकालय,

खपाटीया चकला, गांधीचौक सूरत—३

—※—

छठ्ठी आवृत्ति] वीर सं० २५१८ [प्रति १५००

"जैन विजय" प्रिन्टिंग प्रेस, सूरतमें शैलेश डाह्याभाई कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य १८-००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❋ प्रस्तावना ❋

८४ वर्ष पहले की बात है जब कि बडनगर निवासी खण्डेलवाल ज्ञातीय **पं० उदयलालजी कासलीवाल** जब बनारस (काशी) में श्री स्याद्वाद महाविद्यालयमें संस्कृतकी व धर्मकी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तब आपने **भद्रबाहु चरित्र** और **धन्यकुमार चरित्र** ये दो संस्कृत ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद अवकाशके समय तैयार किये थे जो बा० बद्रीप्रसाद जी **जैन** द्वारा उनके जैन भारती भवन द्वारा वीर सं० २४३७ में बनारससे प्रगट हुआ था, जो बिक जाने पर कई वर्षोंसे मिलते ही नहीं थे अतः हमने श्री **धन्यकुमार चरित्र** पांचवी बार ५ वर्ष हुए प्रगट कर दिया जो बिक चूका और यह धन्यकुमार चरित्र भी छट्ठी बार प्रगट किया जाता है, आशा है यह आवृत्ति भी शीघ्र ही बिक जायेगी क्योंकि यह सच्चा चरित्र बहुत ही शिक्षाप्रद है।

स्व० पं० उदयलालजी कासलीवाल जब बनारससे आकर बम्बईमें रहे थे तब आपने श्री **आराधना कथाकोष** ब्र० नेमिदत्त विरचित संस्कृत पद्य-शास्त्र तीन भागोंका संस्कृतसे हिन्दी अनुवाद तैयार किया था जो 'जैनमित्र' जब बम्बईसे पाक्षिक प्रगट होता था तब मूल सहित बम्बईसे प्रगट होकर इसके ग्राहकोंको भेंट स्वरूप बांटे गये थे, जो आज मिलते ही नहीं हैं व उनके भी पुनः प्रकट होनेकी आवश्यकता हैं तथा आपने श्री **नेमिनाथ पुराण** का भी हिन्दी अनुवाद तैयार किया था जो आपके जैन साहित्य प्रचारक कार्यालय बम्बईसे प्रगट हुआ था जो भी न मिलनेसे हमने इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकट किया जो वह **'मित्र'** के ५६वें **वर्षके ग्राहकोंको बांटी जा चुकी है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारांश कि पं० उदयलालजी कासलीवाल ये चार संस्कृत ग्रंथोंका अनुवाद उस समय कर गये थे जब दि० जैन समाजमें बहुत कम साहित्य हिन्दी भाषामें प्रकट हुआ था। अत: दि० जैन समाज पर आपका उपकार कम नहीं है।

इस धन्यकुमार चरित्रकी प्रथम आवृत्तिकी प्रस्तावनामें पं० उदयलालजी कासलीवालने बताया है कि यह चरित्र कोई बनावटी चरित्र नहीं है। लेकिन हमारे अंतिम २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर तथा उनके ही समयमें होनेवाले महाराज श्रेणिकके समकालीन श्री धन्यकुमारजी थे जो प्रथम कैसे सामान्य पुरुष थे व फिर कैसे श्रीमान् हुये, कैसे२ कष्ट सहन किये, कैसे राजा हुये, कैसे मुनि दीक्षा ली व कैसे आप सर्वार्थसिद्धि गये यह सब वर्णन इस धन्यकुमार चरित्रमें सात अधिकारोंमें है, जिसमें आपका पूर्व भव भी जाननेको मिलेगा।

यह चरित्र दानकी महिमाका वर्णन करनेवाला हैं व दान करनेसे ही धन्यकुमारजी कैसे भाग्यशाली हुए यह सब वर्णन इस चरित्रमें मिलेगा। तथा इसकी प्रस्तावनामें आपने ज्ञान दानकी भी अपूर्व महिमा बताई है।

आज पं० उदयलालजी इस संसारमें नहीं हैं तो भी आपकी अनुवादित उपरोक्त चार ग्रन्थोंसे आपकी यादगार दि० जैन समाजमें चिरकाल तक कायम रहेगी।

सुरत वीर सं० २५१८ ज्येष्ठ सुदी ५ ता. ५-६-९२	निवेदक— **स्व. मूलचंद किसनदास कापड़िया** **शैलेश डाह्याभाई कापड़िया**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची।

१. पहिला अधिकार—
ग्रन्थारंभ, श्री धन्यकुमार जन्म तथा उपनिधियोंके लाभका वर्णन २

२. द्वितीय अधिकार—
श्री धन्यकुमारके विघ्नोंकी शान्ति तथा धर्मश्रवण १५

३. तृतीय अधिकार—
अकृतपुण्यके भवान्तरका वर्णन २७

४. चतुर्थ अधिकार—
अकृतपुण्यके दानका वर्णन ३८

५. पंचम अधिकार—
श्री धन्यकुमारके जन्मांतरका वर्णन ४७

६. छठ्ठा अधिकार—
श्री धन्यकुमारके राज्यलाभका वर्णन ५८

७. सातवां अधिकार—
श्री धन्यकुमारका अपने साले शालिभद्रके साथ वैराग्य और मुनिदीक्षा तथा श्री धन्यकुमारका सर्वार्थसिद्धिमें गमन ७०

८. अनुवादकर्ताका परिचय— ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

भट्टारक श्री सकलकीर्तिजी विरचित

श्री धन्यकुमार चरित्र

[भाषानुवाद]

श्री शोभित तुव वदनशशि, हरैं जगतजन ताप ।
इह कारण पदपद्म तुव, नमहुं नाथ ! गतपाप ॥१॥
शिव-सुखदायक आपको, कहैं जगतमें लोक ।
क्यों न हरौ भव-गहनवन, भ्रमण नाथ ! हे शोक ॥२॥
अखिल अमित भूलोकमें, तुम सम नहीं दयाल ।
दयापात्र फिर क्यों न मैं ? विभो ! दीनदयाल ॥३॥
आनंदकंद जिनेश ! अब, गह करके मम हाथ ।
अतिगंभीर जगजलधिसे, करौ पार जननाथ ! ॥४॥
सकलकीर्ति मुनिराजने, संस्कृतमें सुविशाल ।
विरचौ धन्यकुमारको, चरित अमित गुणमाल ॥५॥
तिहिं भाषा मैं अल्पधी लिखूं स्वपर सुख हेतु ।
इस महान शुभकार्यमें नाथ ! बनहु सुखसेतु ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहिला अधिकार

ग्रन्थारम्भ ।

गर्भकल्याण, जन्मकलयाण, दीक्षाकल्याण, ज्ञानकल्याण और निर्वाणकल्याणके अनुभोक्ता, त्रिभूवनके स्वामी, शिव-रमणीके नाथ तथा गुणोंके समुद्र श्री वर्द्धमान जिनभगवानके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।।१।।

अन्तरंग तथा बहिरंग लक्ष्मीसे विभूषित, आरंभमें धर्म-तीर्थके प्रवर्तन करनेवाले, धर्मके स्वामी तथा अनंत गुणोंके आकर श्री वृखभनाथ भगवानके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।।२।।

सम्पूर्ण मंगलके करनेवाले, लोकश्रेष्ठ, सज्जन पुरुषोंके लिये आश्रयस्थान तथा जगतके हित करनेवाले शेष समस्त तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।।३।।

मनुष्य देव और विद्याधरोंके अधिपति तथा गणधरादिसे विशोभित, ढाईद्वीपमें विहार करनेवाले जो श्री श्रीमंधरस्वामी प्रभृति मोक्षमार्गके प्रकाश करनेवाले बीस तीर्थंकर हैं उन्हें विनत मस्तकसे मैं नमस्कार करता हूँ ।।४-५।।

ये उपर्युक्त तीर्थंकर तथा और जो त्रिकालमें होनेवाले हैं, मेरे द्वारा नमस्कार तथा स्तवन किये हुये वे सब मेरे आर-म्भ किये हुये कामकी सिद्धिके लिये हों ।।६।।

ज्ञानावरणादि आठ कर्म तथा शरीरसे विरहित सम्य-क्त्वादि आठ महागुणोसे विभूषित, तीन लोकके शिखर पर आरूढ़, इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती आदिसे नमस्कार किये हुये, अनंत गुणोंके स्थान तथा उत्तमगुणोंको अभिलाषा करने-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले भव्य पुरूषोंके द्वारा ध्यान करने योग्य सिद्ध भगवान का मैं प्रतिदिन स्मरण करता हूँ ।। ७–८ ।।

छत्तीस गुण विराजमान, दर्शनाचार, ज्ञानावरणादि प्रभृति पञ्चाचारके परिपालन करनेमें तत्पर, त्रिभुवनके द्वारा अभि-वन्द्यनीय तथा शिष्यों पर दया करनेवाले आचार्योंके लिये मैं अभिवन्दन करता हूं ।।९।।

जो अपने जन्म रूप आतापके नाश करनेके लिये अङ्ग पूर्व रूप पीयूष रसका स्वयं पान करते हैं तथा और भव्य जीवोंको पिलाते हैं ऐसे उपाध्यायोंका अपने आत्मस्वरूपकी समुपलब्धिके लिये स्तवन करता हूँ ।।१०।।

जो अखण्ड रत्नत्रय तथा आश्चर्यजनक योगका त्रिकाल साधन करते हैं वे साधुराज शिव प्राप्तिके लिये मुझे शक्ति प्रदान करें ।।११।।

सम्पूर्ण ऋद्धि तथा मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञानसे विभूषित, गुणोंके समुद्र, त्रिभुवनाधिपतिसे बंद-नीय तथा पूज्यनीय और सम्पूर्ण अङ्गों की रचना करने में सचमुच वृषभसेन प्रभृति गौतमगणधर पर्यन्त सर्व गणधरादि मेरे द्वारा स्तवन किये अपनी-अपनी बुद्धिके प्रदान करनेवाले हों ।।१२–१३।।

संपूर्ण सिद्धांत रूप वारिधिके पारको प्राप्त हुये सम्य-ग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप अनर्घ्य रत्नसे अलं-कृत, परिग्रह रहित, तथा दिशा रूप वस्त्रके धारण करने वाले और कितने कुन्दकुन्दादि विद्वान कविराज इस संसार में प्रसिद्ध हुये हैं। तथा गुणोंसे गुरुत्व पदको धारण करने वाले हैं। उन सब उत्तम२ महात्माओंका मैं स्तवन करता हूँ ।।१४-१५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारह अंग चतुर्दश पूर्व तथा प्रकीर्ण रुप शरीरके धारण करनेवाली, सम्यग्दर्शनादि रत्नालंकारसे विराजित, सप्ततत्व नव पदार्थके वर्णनसे युक्त, अनन्त सुखको देनेवाली गुणोंसे विभूषित, जिनभगवानके मुख कमलसे उत्पन्न तथा गणधर भगवान के द्वारा वृद्धिको प्राप्त भारती (सरस्वती) मेरे द्वारा स्तवन की हुई तथा नमस्कार की हुई सर्वार्थ सिद्धिकी प्राप्तिके कारण अथवा सम्पूर्ण अर्थकी सिद्धि के लिये हो ॥१६-१७॥

बाह्य अन्तरङ्ग परिग्रहसे विनिर्मुक्त, योग्य उत्तम २ गुणोंसे विभूषित, संपूर्ण भव्य पुरुषोंके हित करनेमें तत्पर, संसार रुप समुद्रके पारको प्राप्त हुये तथा संपूर्ण अर्थकी सिद्धिके साधन करने वाले धन्यकुमार प्रमुख बाकीके सब योगीराजोंको उनके गुणोंकी समुपलब्धिके लिये स्तवन करता हूँ ॥१८-१९॥

इस उत्तम २ मङ्गल करनेवाले उत्कृष्ट तीर्थंकर भगवान, जिनवाणी तथा आचार्यादि साधुओंका स्तवन तथा अभिवन्दन करके मङ्गलसिद्धि, अपने आरंभ किये हुयेकी सिद्धि, विघ्ननाश, मोक्षसम्प्राप्ति तथा कर्म नाश प्रभृति कार्योंकी सिद्धिके लिए अपने और दुसरोंके हितकी इच्छासे उत्तम वैश्य कुलदीपक तथा सर्वार्थसिद्धिमें जानेवाले धन्यकुमार का शुभ और पवित्र चरित्र निर्माण करुंगा ॥२०-२२॥

जिस चरित्रके सुननेसे भव्य पुरुषोंके रागरुप शत्रु तो नाश होंगे और संवेग तथा समाधित आदि गुणसमूह समुद्भूत होंगे ॥२३॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं इस धन्यकुमारके चरित्रके द्वारा स्वर्गकी सम्पदाके सुखका कारण, बडे २ उत्तम पात्रोंके दानका शुभ फल कीर्तन करुंगा ॥२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही कारण है कि धन्यकुमार केवल पात्रदानके फलसे राज्य सम्पदासे विराजित तथा स्वर्गकी लक्ष्मीका उपभोग करनेवाला हुआ ॥२५॥

इस विशाल वसुन्धरा मण्डल पर जम्बू वृक्षसे उपलक्षित लाख योजन विस्तारवाला, तथा, समुद्रसे वेष्टित गोलाकार जम्बूद्वीप है। उसके मध्यमें अत्यन्त मनोहर लाख योजन ऊंचा और जिनमंदिर देव तथा देवाङ्गनाओंसे शोभायमान सुवर्णमय सुमेरु शैल है ॥२६-२७॥

उसके दक्षिण भागमें अतिशय सुन्दर तथा विद्याधर मनुष्य और देवताओंसे शोभायमान धनुषाकार उत्तम भरत-क्षेत्र है ॥२८॥ उसके ठीक बीचमें अत्यन्त हृदयहारी, धर्मके सम्पादनका कारण, विद्वान तथा उत्तम २ कुलमें समुत्पन्न धर्मात्मा पुरुष तथा जिन भगवान आदिसे विभूषित आर्यखण्ड है ॥२९॥

उसमें उत्तम २ मनुष्योंसे पूर्ण, ग्राम, खेट तथा पुर आदिसे सुन्दर, स्वर्ग और मोक्षकी समुपलब्धिका हेतुभूत अवन्ती नाम देश है ॥३०॥ जिसमें जगतके उपकार करनेवाले आचार्य, उपाध्याय, साधु, गणधर तथा केवलज्ञानी ये सब अपनी२ विभूतिके साथ विहार करते हैं ॥३१॥

जहां योगीन्द्र (साधु), जिनालय तथा धर्मात्माओंसे पुर, पतन, खेट, ग्राम, गिरि तथा भुवनादि शोभायमान हैं ॥३२॥ जिस देशमें उत्पन्न हुये कितने बुद्धिमान पुरुष तो तपश्चरण द्वारा मोक्षका साधन करते हैं, कितने सर्वार्थ सिद्धिका तथा कितने ग्रैवेयकादिका साधन करते हैं ॥३३॥

कितने विचक्षण पुरुष सर्वज्ञ भगवानकी परिचर्याके द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दर्शन ग्रहण करते हैं। कितने इन्द्रपदको प्राप्त होते हैं तथा कितने दानके फलसे भोगभूमिमें जाते हैं ॥३४॥ जिस देशमें सम्पूर्ण अभ्युदय का हेतुभुत श्री जिनभगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म, श्रावक मुनि तथा सुचतुर पुरुषों के द्वारा चलता है ॥३५॥

उसी धर्मके द्वारा अवन्ती निवासी भव्य पुरुष निरंतर पद पदमें सुख, उत्तम २ वस्तु तथा संपत्तिको प्राप्त होते हैं ॥३६॥ जिस देशमें धर्मात्मा पुरुष अपने अनुकूल आचार तथा गुणोंके द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तकका साधन करते हैं तो उस देशमें और २ सामान्य विषयके साधनको हम कहां तक कहें ॥३७॥

उसी अवन्ती देशके बीचमें नाभिके समान सुविशाल-विद्वान, धर्मात्मा, उन्नत २ चैत्यालय तथा महोत्सवसे मनोहर उज्जयिनी नाम पुरी है ॥३८॥ वह बड़े २ उन्नत गोपुर, प्राकार, खातिका तथा सुभटोंसे युक्त होनेसे लोकमें अयोध्या के समान शत्रुओंसे अलङ्घनीय मालूम होती है ॥३९॥

जिस नगरीमें श्रावक तथा श्राविकाओंसे पूर्ण जिन प्रतिमाओंसे पूर्ण, जिन प्रतिमाओंसे सुन्दर ऊंचे २ जिन मंदिर वाद्य तथा धनवान लोगोंसे शोभायमान हैं ॥४०॥ जिसमें धर्मात्मा पुरुष प्रातःकाल ही शय्यासे उठकर निरंतर सामायिक स्तवन तथा ध्यानादिसे उत्तम धर्मका संपादन करते रहते है ॥४१॥

और अपने गृहमें तथा जिनालयमें तीर्थंकर भगवानकी पूजन करके मध्याह्न समयमें पात्र-दानके लिये गृह द्वार पर साधुओंका समवलोकन करते रहते हैं ॥४२॥ तथा दिनभरमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न हुये पापकर्मोंके विनाशके लिये और शुभ कर्मको समुपलब्धि के लिये शुद्धिपूर्वक सामायिक तथा महामन्त्र का सचिंतवन करते हैं ॥४३॥

इसी प्रकार और २ शुभाचरण व्रत तथा शीलादि पालन तथा पर्व तिथिमें उपवास पूजनादिके द्वारा पुरवासी लोग धर्मका सेवन करते हैं ॥४४॥ पश्चात् उसीके फलसे उन्हें इन्द्रियों से उत्पन्न होनेवाले सुख, भोगोपभोग सम्पत्ति सुन्दर स्त्रियां तथा बालक अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त होते हैं ॥४५॥

अहो ! देवता लोग भी शिव-सुखकी संप्राप्ति के लिये जिस उज्जयिनीपुरीमें अपने अवतार होनेकी इच्छा करते हैं अथवा और कोई ऊंचे पदकी प्राप्तिके लिये भी तो उस पुरीका और क्या उत्तम कीर्तन होगा ? ॥४६॥ इत्यादि वर्णनसे उपलक्षित उज्जयिनीपुरीमें-प्रतापी, धर्मबुद्धि तथा धर्मात्माओंसे अत्यंत अनुरागका करनेवाला अवनिपाल नाम राजा है ॥४७॥

और सरल हृदय धनपाल नाम एक वैश्य रहता है। तथा शुभ २ लक्षणोंसे विराजित प्रभावती नाम उसकी भार्या है ॥४८॥ उन दोनोंके परस्परमें अत्यन्त प्रेम करनेवाले तथा गुण और सुन्दर २ लक्षणोंसे समान देवदत्त प्रभृति सात पुत्र हुये ॥४९॥ उनमें कितने बालक तो अक्षराभ्यास करने लगे और बाकीके बडे पुत्र धन सम्पादनके लिये व्यापार करने लगे ॥५०॥

पश्चात् किसी दिन प्रभावती अन्तिम चतुर्थस्नान करके प्राणनाथके साथ २ शय्यामें सोई हुई थी सो उसने शुभोदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से रात्रिके पिछले प्रहरमें अपने गृहद्वारमें प्रवेश करते हुये उन्नत वृषभ, कल्पतरु तथा कांतिशाली चन्द्रादि शुभ ग्रहों को देखें। उसे स्वप्न देखनेसे बहुत आनन्द हुआ। बाद प्रातः-काल होते ही शय्यासे उठी और सब धार्मिक क्रियायें करके स्वामीके पास गई। और अपनी मधुर २ वाणीसे पुत्रके अभ्युदय सूचक देखे हुये शुभ स्वप्नोंको निवेदन किये।

स्वप्नके सुननेसे धनपालको भी बहुत संतोष हुआ। बाद वह कहने लगा–प्रिये! इन शुभ स्वप्नोंके फलसे तो मालूम होता है कि–तुम्हें दानी, ऐश्वर्यका उपभोग करनेवाले, उत्तम वैश्यकुल रूप गगन मण्डलमें गमन करनेवाला सूर्य तथा अपने सुन्दर २ गुण और उज्जवल सुयश के द्वारा त्रिभुवन को धवलित करने वाले महान पुत्र रत्न की समु-पलब्धि होगी।

प्राणनाथके वचनोंसे प्रभावती को ठीक वैसा ही आन-न्द हुआ जैसा खास पुत्रकी सम्प्राप्तिसे होता है। इसके बाद फिर गर्भके शुभ चिह्न प्रगट दिखाई देने लगे और क्रमसे जब नव महीने पूर्ण हुये तब पुण्यकर्मके उदयसे प्रभावतीने उत्तम दिन तथा शुभ 'मुहूर्त की आदिमें सुख पूर्वक सुन्दर कान्तिके धारक तेजस्वी शुभलक्षणमण्डित शरीरके धारक, सुभग तथा मनोहर रूपसे राजित उत्तम पुत्ररत्न उत्पन्न किया। यह पुत्र वास्तवमें पूण्यशाली था अतः उसकी नाल गाड़ने के लिए जब पृथ्वी खोदी गई तब धनसे भरी हुई बड़ी भारी कढाई निकली। तथा इसी तरह जब उसके मज्जनके लिए भी खोदा गया तब भी पृथ्वीके भीतरसे धन का भरा हुआ दुसरा भाजन निकला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनपाल इस आश्चर्य को देखकर उसी समय राजा के पास दौड़ा गया और कहने लगा कि-विभो! मुझे उत्तम पुत्रकी प्राप्ति हुई है और साथ ही साथ बहुत धन भी मिला है। धनपाल के वचन सुनकर महाराज अवनिपाल बोले-श्रेष्ठिन्! जिस पुत्रके पुण्य से वह धन निकला है उसका मालिक भी वही पुण्यशाली है। मुझे किसीके धनकी अभिलाषा नहीं है। महाराजकी इस प्रकार निःस्पृहता से धनपाल को बहुत सन्तोष हुआ। बाद वहांसे गृहपर आकर सौधके जिनालयमें महाविभूति पूर्वक समस्त कल्याण कर्मकी कारणभूत विघ्नोंके नाश करने वाली जिन भगवानकी महा-पूजा की। नाना प्रकार दानादिसे अपने कुटुम्बीजनोंको तथा याचक लोगोंको सन्तोषित किये। और बन्धुओंके साथ २ गीत, नृत्य वादित्र, ध्वजा, तोरणमाला प्रभृति महोत्सव पूर्वक पुत्रके उत्पन्न होनेका उत्सव किया ।।५१-६०।।

और फिर दशवें दिन बहुत धन खर्चकर सर्वजिन चैत्यालयों में जिनेन्द्रकी पूजन की तथा बंधु लोगोंको और याचक लोगों को उनकी इच्छानुसार संतोषित किये।

बन्धु लोगोंने विचारा कि अहो! इसी कुलदीपक उत्तम पुत्रके उत्पन्न होनेका ही तो यह फल है जो हम आज धन्य तथा कृतार्थ हुये हैं। इसी विचारसे उन्होंने पुत्रका भी शुभ नाम धन्यकुमार ही रख दिया। पश्चात् सुन्दर स्वरूपशाली, लोगोंके लोचनोंका प्रेम भाजन तथा अपने योग्य अलंकारोंसे अलंकृत धन्यकुमार भी माता पितादि बन्धुओंको दुग्धपानादि सुमधुर चेष्टाओंसे आनन्द देने लगा तथा बुद्धि, शरीर, सौंदर्यतादिसे दिनों दिन कुमुदबान्धवके समान बढ़ने लगा। और धीरे २ मुग्धावस्थाको उल्लंघन कर कुमार अवस्थामें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया और मनोहर गुणों के द्वारा देवकुमार के समान बढ़ने लगा।

उस समय धनपालने–देवशास्त्र, तथा साधुओंकी भक्ति-पूर्वक परिचर्या कर विद्या, कला, विज्ञान प्रभृति गुणोंकी समुपलब्धिके लिये धन्यकुमारको उपाध्यायके पास महोत्सव-पूर्वक पढ़नेको बैठाया। बुद्धिमान धन्यकुमार भी थोड़े ही समयमें उत्तम बुद्धि रूप नौकाके द्वारा शास्त्र नीरधिके पार हो गया। पश्चात् धीरे धीरे युवावस्थामें अनेक शास्त्रोंका अनुभवी ज्ञान तथा कला कौशलका जाननेवाला, विचारशील, उत्तम गुणोंका आश्रय, बुद्धिमान, सुयशसे सारे वसुन्धरा वलयमें प्रसिद्ध, शुभ लक्षणादिसे शोभित, सुन्दर शरीरका धारक, रूप लावण्य भूषण-वसन और पुष्पमालादिसे विराजित होकर ऐसा शोभने लगा जैसा कामदेवश्री के द्वारा शोभता है।

धन्यकुमार इस अवस्थामें भी प्रमादी न होकर निरंतर धर्म सम्पादनके लिये प्रचुर धन लगाकर देव गुरु सिद्धांत की परिचर्या किया करता था और शुभ भावोंसे अपनी इच्छानुसार दीन अनाथ लोगोंके लिये दयाबुद्धिसे दानादि दिया करता था इसी तरह संपदाका उपभोग पूर्वक कुमार अवस्थाके योग्य सुखजनक भोगोंका अनुभव करते करते बहुत दिन बीते।

निरंतर इसी प्रकार लक्ष्मीके व्यय करनेकी उसकी उदारताको उसके भाई लोग सहन नहीं कर सके। सो किसी दिन दुर्बुद्धियोंने अपनी मातसे कहा देखो! हम सब तो धन कमावें और उसका खानेवाला यह केवल धन्यकुमार, जो कभी कुछ व्यापार नहीं करता है!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावतीने–पुत्रोंकी रामकहानी अपने स्वामीसे कह सुनाई और साथमें कहा कि–देखो ! धन्यकुमार अब सब तरह सौभाग्य–सम्पन्न हो गया है उसे आप व्यापारमें क्यों नहि लगाते ? व्यापारके न करने ही से बड़े भाई उससे द्वेष करते रहते हैं।

अपनी कांताके वचनानुसार धनपाल भी शुभ मुहूर्तमें सुपुत्र धन्यकुमारको किसी तरह बाजारमें ले गया और उसे सौ दीनारे देकर बोला–प्यारे ! यह द्रव्य लेओ। और इसके द्वारा यदि कोई किसी वस्तुको बेचनेके लिये लावै तो तुम उसे खरीद लेना तथा उससे भी किसी और वस्तुको अच्छी देखकर खरीदना। सो इसी तरह जबतक भोजनका समय न आ जावै तबतक व्यापार करते रहना फिर अन्तमें जो वस्तु खरीदी हो उसे नौकरके हाथसे उटवाकर भोजन करनेके लिये घर पर आ जाना। इस प्रकार समझाकर धनपाल तो घर चला गया, और सरल हृदय तथा सौन्दर्यशाली धन्यकुमार नौकरके साथ २ वहीं पर ठहरा। इतनेमें कोई पुरुष लकड़ीकी भरी हुई एक उत्तम गाड़ी बेचनेके लिये वहीं पर लाया। धन्यकुमारने पिता का दिया हुआ धन उसे देकर उससे वह गाड़ी खरीद ली। और फिर गाड़ीके द्वारा अपनी इच्छानुसार एक मैंढा मौल ले लिया। मैंढेको भी किसी दूसरेको देकर उससे चार खाटके पाये खरीद लिये। बाद अपने घरपर आ गया। उस समय धन्यकुमारकी माता बहुत आनन्दित हुई और कहने लगी कि अहो ! आज पहले ही दिन मेरा पुत्र व्यापार करके आया है इस लिये उत्सव करना चाहिये।

उधर वे आठ पुत्र देखकर कहने लगे कि–देखो ! यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितने आश्चर्यंकी बात है जो आज ही तो पिताजीने व्यापार करनेके लिये सो दीनारे दो थी और पहले ही दिन उन्हें खोकर चला आया तो भी हमारी माता उत्सव कर रही है और हम लोग बहुत ही धन कमाकर लाते हैं फिर भी हमारे सामने तक न देखकर उल्टी उदासीन रहती है। अस्तु! इसमें इसका क्या दोष ? किन्तु दोष है हमारे पूर्वोपार्जित कर्मोंका ।

पुत्रोंके वचनोंको सुनकर प्रभावतीने उन्हें हृदयमें रख लिये और फिर सब पुत्रोंके पहले ही धन्यकुमारको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन कर लिया। पश्चात् एक बड़े भारी काष्टके भाजनमें जल भरकर प्रीतिपूर्वक अपने ही हाथोंसे खाटके ही पायोंको धोने लगी। धोनेके साथ ही पायोंका कुछ भाग दूर जा गिरा, और शेष भागसे कुमारके प्रचुर पुण्योदयसे देदीप्यमान अनेक रत्न गिरने लगे और उसीमें एक व्यवस्था पत्र भी निकला। तो कदाचित कोई कहे कि ये खाटके पाये किसके हैं ? यह पत्र किसने लिखा ? तथा इसमें पत्र कैसे आया ? इन सब प्रश्नो का उत्तर नीचे लिखा जाता है—

पहले इसी नगरीमें पुण्यशाली तथा महाधनी वसुमित्र नाम राजश्रेष्ठि हो गया है, सो प्रचुर शुभोदयसे उसके यहां समस्त भोगोपभोग सम्पदाको देनेवाली नवनिधियें पैदा हुई थी। एक दिन वसुमित्रने उपवनमें आये हुये अवधिज्ञानी मुनिसे जाकर पूछा विभो! आगे ऐसा कौन पुण्यात्मा नर-रत्न उत्पन्न होनेवाला है जो इन नव निधियोंका स्वामी होगा ? मुनिराजने अवधिज्ञानके बलसे कहा—

"महाराज ! अवनिपाल की उत्तम राजधानी में धनपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैश्यका धन्यकुमार नाम पुत्र उत्पन्न होनेवाला है सो वही पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे इन निधियोंका भी स्वामी होगा और उसके द्वारा लोगोंको बहुत सुख सम्पत्ति प्राप्त होगी।"

मुनिराजके वचनोंको सुनकर वसुमित्र अपने घर गया और फिर मुनिराजके कथनानुसार यों व्यवस्था पत्र लिखा—

"श्रीमान् महामण्डलेश्वर महाराज अवनिपालके सुराज्य में वैश्यकुलका उत्तम भूषण, धनी, भोगी तथा पुण्यशाली जो धन्यकुमार होनेवाला है वही धन्यात्मा मेरे गृह में इस स्थान से नवनिधियों स्वीकार कर सुखपूर्वक यहीं पर रहे।"

इस प्रकार पत्र लिखकर पत्रको उत्तम २ रत्नोंके साथ साथ खाटके पायोंमें बन्द कर सुखपूर्वक रहने लगा। पश्चात् सेठ तो आयुके अवसान समयमें सल्लेखनापूर्वक प्राणोंको छोड़ कर शुभोदयसे सुख-निकेतन स्वर्गमें गया, सेठजीका स्वर्गवास हो जाने बाद-बिचारे शेष घरके लोग भी अशुभ कर्मोदयसे मरकर कितने नरकमें, कितने अपने अपने कर्मोंके अनुसार गतियोंमें गये। इनमें जो सबके पीछे मरा उसे जलाने के लिये खाट सहित स्मशान भूमिमें लिवा ले गये। उन्हीं खाट के पायोंको शुभोदयसे धन्यकुमारने चाण्डालके हाथसे खरीदे।

ग्रन्थकार कहते हैं कि—अहो! शुभ कर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो नहीं प्राप्त होनवाली, अत्यन्त दुर्लभ, बहुत दूरकी तथा बहुत धनके द्वारा मिलनेवाली वस्तुको भी स्वयं मिला देता है।

धन्यकुमार को पत्रके बांचने से बहुत खुशी हुई। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें जैसा लिखा था उसी अनुसार निधियोंके स्थापनादि को ठीक ठीक समझकर राजाके पास गया और उनसे युक्ति पूर्वक गृहके लिये अभ्यर्थना की । तथा अपने शुभोदयसे आज्ञा मिल जानेपर घरके भीतर गया और वहां निधियोंको देखकर आनन्दित हुआ ॥१२२-१२३॥

बाद वह उत्कृष्ट निधियोंको अपने अधिकारमें करके उनके द्वारा होनेवाले अपरिमित धनका व्यवहार मनोभिलषित फलके देनेवाली देव गुरु तथा शास्त्रकी महापूजामें, सत्पात्रोंके लिये पुण्य सम्पादनके कारण दानके देनेमें, दीन तथा अनाथोंके लिये उनकी इच्छानुसार दया दान करने में तथा प्रचुर विभूतिसे जिन धर्मियोंका उपकार करने लगा।

इसी तरह धन्यकुमार थोड़े दिनोंमें राज्यमान्य होकर त्रिभुवन विस्तृत सुयशके द्वारा उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार भोगोंको भोगने लगा। धन्यकुमार अपने कुटुम्बी तथा और और लोगोंको भी बहुत प्रिय था । वह अपने शुभाचरण से धर्म सेवन करता हुआ सुखरूप पीयूष-समुद्रोंमें निर्मग्न होकर कौतुकसे बीते हुये समयको न जानकर सुखपूर्वक रहने लगा ॥१२४-१२८॥

अहो ! धन्यकुमार अपने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मको उदयसे सर्वत्र आश्चर्य जनक भोग तथा सुखकी सम्पादन करनेवाली उत्तम संपत्ति-नव निधियोंको प्राप्त होकर मनुष्य तथा राजादिसे मान्य सुखका सदैव उपयोग करता है, ऐसा समझ कर जो पुरुष सुख के अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे सदैव अपने पवित्र आचरणोंसे केवल एक पुण्यका उपार्जन करें ॥ १२९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि यही पुण्य, पुण्य तथा गुणोंका आश्रय है, पापका नाश करनेवाला है पुण्यका बुद्धिमान लोग आश्रय करते हैं पुण्यसे समस्त सुख प्राप्त होते हैं, पुण्यकी प्राप्तिके लिये ही पुण्य क्रियायें की जाती हैं, पुण्यसे त्रिभुवनमें होनेवाली लक्ष्मी प्राप्त होती है, पुण्यके सम्पादन करनेका बीज व्रतका धारण करना है। इसलिये बुद्धिमानों ! सुखकी समुपलब्धिके लिये निरन्तर पुण्यके उपार्जन करनेमें चित्त लगाओ ॥१३०॥

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्रमें
धन्यकुमारका जन्म तथा उपनिधियोंके लाभका वर्णन
नाम पहिला अधिकार समाप्त हुआ ॥१॥

द्वितीय अधिकार

जो धर्मके आदि प्रवर्तक हैं, जिन्हें त्रिभुवन-वर्ति समस्त लोग नमस्कार करते हैं, सारे वसुन्धरा मण्डलमें जो उत्तम गिने जाते हैं, सज्जन पुरुषोंके आश्रयाधार तथा अखिल संसारके जीवोंका कल्याण करनेवाले हैं, उन श्री जिनेन्द्रका मैं स्तवन करता हूं।

एक दिन उज्जयिनीका ही रहनेवाला कोई बुद्धिमान धन्यकुमारका कांतिशाली सुन्दर रूप देखकर उसके पितासे बोला—धनपाल ! रतिके समान सुन्दर एक बाला है। मेरी इच्छा है कि मैं उसे धन्यकुमारके लिये विवाह दूं, जिससे वह अपनी इच्छानुसार सुखोपभोग कर सके। उसके उत्तरमें धनपालने कहा—मैं तो इसे अच्छा नहीं समझता। आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये कि हमसे भी जो ऐश्वर्यादि में बड़े हैं उनके लिये अपनी कन्याका संकल्प करें। उसने कहा—आपने कहा सो ठीक है परन्तु मेरी यह इच्छा नहीं जो मैं उसे दूसरेके लिए देऊं। इसलिये मैंने तो अपने हृदयमें निश्चय कर लिया है कि जिस किसी समय देऊंगा तो धन्यकुमार ही के लिये देऊंगा।

इसी तरह और भी कितने बड़े २ धनिक लोग कहने लगे कि हम भी अपनी कन्याका परिणय संस्कार धन्यकुमार के साथ ही करेंगे औरोंके साथ नहीं। इस प्रकार दिनों दिन बढ़ते हुये पुण्यशाली धन्यकुमारका अभ्युदय उसके बड़े भाईयोंको सहन नहीं हुआ सो उसके साथ ईर्षा करने लगे और साथ ही उसकी जीवन यात्राका नाम शेष करनेके लिये संकल्प किया।

उधर विचारे धन्यकुमारको शुभ कामोंकी ओरसे बिल्कुल अवकाश नहीं मिलता था सो उसे यह कैसे मालूम हो सकता था कि मेरे उपर भाईयोंके क्या २ षडयन्त्र रचे जा रहे हैं।

भावार्थ—भाइयोंके दुष्ट अभिप्रायोंको वह न जान सका। सो किसी दिन वे पापी लोग कुछ विचार कर उपवनकी वापिकाओंमें जल क्रीडाके लिये धन्यकुमार को लिवा ले गये। बिचारा सरल हृदय धन्यकुमारको वापिकाके किनारे पर बैठकर प्रीतिपूर्वक उन लोगोंकी जल लीला देखने लगा। इतनेमें उसके भाईयोंमें से एक कुटिल परिणामी पापीने पीछेसे आकर और गला दबाकर उस विशुद्ध बुद्धिको वापिकामें उलट दिया धन्यकुमार पापके उदयसे वापिका के गहरे जलमें गिरा तो परंतु गिरते २ भी उसे महा मन्त्रका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मरण हो आया। उन पापात्माको इतने पर भी जब संतोष न हुआ तब ऊपरसे और भी निर्दयतापूर्वक उसके किसी प्रकार न जीनेकी इच्छासे पत्थर फेंकने लगे। पश्चात् यह समझकर कि अब वह नियमसे अपने जीवनका भाग पूरा कर चुका होगा सो इसी विश्वाससे किसी प्रकार संतोष मानकर घरकी ओर लौट गये ग्रन्थकार कहते हैं कि—

"संसारमें ऐसा कौन-सा बुरा काम है जिसे पापी लोग न करते हों किंतु नियमसे करते हैं।"

उधर धन्यकुमारके बड़े भारी पुण्योदयसे अथवा यों कहो कि महामंत्रकी शक्तिसे उसी समय जल देवताने आकर धर्मात्मा कुमारको जल निकलनेके द्वारसे धीरे २ बाहर निकाल दिया। यह बात ठीक है कि जिन लोगोंने पहले पुण्य संचय कर रखा है उनके आधीन देवता स्वयं हो जाते हैं, और आये हुये उपद्रवोंका नाश कर उपकार करते हैं। इसी महामंत्रका ध्यान करनेसे जो शुभ कर्मोका बन्ध होता है उससे दुष्टोंके द्वारा किये हुये घोर उपद्रव, सब नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार केसरीके द्वारा बिचारे बड़े २ गजराज क्षणभरमें नामशेष हो जाते हैं। देखो ! यह पुण्य हीका माहात्म्य है जो जलीय उपद्रव, स्थलीय उपद्रव, अकाल मृत्यु चोर विभीषिका, राज विभीषिका आदि विघ्नजाल बहुत जल्दी ही शांत हो जाये हैं। इसीसे तो कहते हैं कि जल, स्थल, दुर्ग, अटवी आदि जनित भयावस्थामें तथा मृत्युकालमें भी केवल एक धर्म ही सहाई होता है। इसी-लिये बुद्धिमानोंको चाहिये कि आपत्तिके समयमें वास्तविक बंधुकी तरह हित करनेवाले तथा मरण प्रभृति अपायके कारणोंसे रक्षा करनेवाले धर्मका निरंतर संपादन करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद पुण्यात्मा धन्यकुमार निर्विघ्न बिना परिश्रम जल बाहर निकल कर अपने नगरकी ओर चला और शहर के बाहर पहुँचकर विचारने लगा कि—देखो ! इस समय तो शुभोदयसे मरते २ मैं किसी तरह बचा हूं, यदि फिर भी उन लोगोंका संग रहेगा तो नहीं मालूम क्या होगा ? इसीलिये मुझे घरपर जाना योग्य नहीं है क्योंकि संसारमें बाह्य शत्रुओंका भय बना रहता है इसलिये वे छोड़े जा सकते परन्तु घरका पुरुष यदि शत्रु हो जाय तो बहुत बुरा होता है। (फिर उसे बन्धुताका भाव नहीं रहता और फिर उसका परिणाम भी यही होता है कि) जिस प्रकार कषायादि अभ्यन्तर शत्रु सहसा नहीं छोड़े जा सकते उसी तरह उन लोगोंका सम्बन्ध छूटना मुश्किल हो जाता है।

इस प्रकार अपने शुद्ध मनमें विचार कर धन्यकुमार वहांसे दूसरे देशकी ओर चल दिया। चलते २ उसने किसी खेतमें एक किसानको हल हांकते हुये देखा और विचारा कि देखो ! मैंने अपनी लीलासे कितनी कला कौशल विद्यायें सीखी हैं, परन्तु यह तो कोई अपूर्व ही विद्या मालूम पडती है। इतना विचार कर किसानके पास गया और आश्चर्यसे उसकी ओर अवलोकन करता हुआ वहीं पर बैठ गया ॥२८॥

कृषक नाना प्रकारके अलंकारोंसे भूषित इसका रूपातिशय देखकर वहुत आश्चर्यान्वित हुआ और धन्यकुमारसे बोला ॥२९॥

हे स्वामी ! मैं कुटुम्बी हूँ, कुछ शुद्ध दही और भात लाया हूं, मुझपर अनुग्रह पूर्वक आप भोजन करें ॥३०॥

हे चतुर ! भोजन करके मुझे और मेरी प्रार्थनाको सफल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करो ! कृषकको प्रार्थना सुनकर धन्यकुमारने उससे कहा यह बात मुझे स्वीकार है ।।३१।।

धन्यकुमारकी स्वीकारतासे सन्तोषित होकर कुटुम्बी उसे हलके पास बिठाकर आप पत्तोंका पात्र बनानेके लिये पत्र लेने गया ।।३२।।

कृषकके चले जानेपर धन्यकुमार मुठ्ठीसे हल पकड़ कर अपनी अपनी इच्छानुसार सहर्ष कौतुकसे बैलोंका चलाने लगा ।।३४।।

उस समय हलके अग्रभागसे पृथ्वीका विदारण होते ही उसे सुवर्णसे भरा हुआ तांबेका बडा भारी एक कलश दीख पड़ा ।।३५।। उसे देखकर धन्यकुमार हा ! मेरे इस अपूर्व विज्ञानाभ्यासमें पूरा पड़े ।।३६।। यदि कुटुम्बी यह प्रचुर धन देखेगा तो प्रगटपने वह भी भाईयोके समान मेरे साथ बरताव करेगा ।।३७।।

इस प्रकार विचार करके द्रव्यके भयसे डर कर धन्य-कुमार कलशको उसी तरह रखकर और मिट्टिसे उसे ढक-कर बैठ गया ।।३८।।

इतने में कृषक भी पत्ते लाया और खड्डेमें रखे हुये निर्मल जलका भरा हुआ कलश तथा दही भात निकाल कर जलसे धन्यकुमारके चरणकमल तथा पत्ते धोकर पत्तोंके भाजनमें भोजन करनेके लिये उसे बिठाया ।।३९-४०।।

धन्यकुमारने कृषककी प्रार्थनाके अनुसार भोजन किया और बाद उसने राजगृह जानेका सुगम मार्ग पूछ कर उसी रास्तेसे अपनी इच्छाके अनुसार चला गया ।।४१।।

धन्यकुमारके जानेके बाद जब कृषक फिर हल चलाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगा तब उसे वही धन दीख पड़ा। द्रव्य देखकर वह आश्चर्य के साथ विचारने लगा ॥४२॥ अहो! उस पुण्य-शालीके शुभोदयसे यह द्रव्य निकला है इसलिये मेरे स्वीकार करने योग्य नहीं है ॥४३-४४॥

यही कारण है कि जो मूर्ख लोग लोभसे दूसरोंका धन ले लेते हैं वे पापके उदयसे अपनी लक्ष्मीका भी साथमें नाश कर जन्म २ में दरिद्री होते हैं ॥४५॥

इस प्रकार विचार कर दूसरोंके धनमें निस्पृह कुटुम्बी वह धन धन्यकुमारको देनेके लिये उसके पीछे २ जल्दी जाने लगा ॥४६॥ धन्यकुमार दूरसे बुलानेवाले कुटुम्बीको आता हुआ देखकर एक वृक्षके नीचे सुखपूर्वक बैठ गया ॥४७॥

इतनेमें कुटुम्बी धन्यकुमारके पास आकर तथा उसे नमस्कार करके बोला—हे नाथ! अपना धन छोड़कर इस तरह इच्छा रहित क्यों चले आये? ॥४८॥ कुटुम्बीके वचन सुनकर धन्यकुमार बोला—भाई! मैं क्या द्रव्य साथमें लेकर यहां आया था? नहीं! किंतु उलटा तुम्हींने तो मुझे दही तथा भातका भोजन कराया है फिर यह धन मेरा कहांसे आया? इसके उत्तरमें अत्यंत निर्लोभी और चतुर कुटुम्बी कहने लगा ॥४९॥

कुमार! मेरे वचन सुनिये—पहले हमारे पितामह तथा पिता यह खेत अपने पुत्रके साथ२ जोता करते थे तथा मैं भी हल चलाता था, परन्तु कभी धन नहीं निकला और तुम्हारे आनेपर आज शुभोदयसे यह धन निकला है इसलिये निश्चयसे यह धन तुम्हारा है क्योंकि हम सरीखे मन्द भाग्योंके लिये ऐसी सम्पत्ति कहां? ॥५०-५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुटुम्बीके इस प्रकार बचन सुनकर धन्यकुमार बोला—अस्तु; यह मेरा ही धन रहै। मैंने तुम्हारे लिये दिया तुम प्रयत्नपूर्वक पुण्योपार्जन तथा सुखके लिये इसका उपयोग करो। विभो! आपका मेरे ऊपर बड़ा भारी अनुग्रह है इस प्रकार धन्यकुमारसे कहकर कुटुम्बी फिर उसे मस्तकसे प्रणाम कर यों कहने लगा ॥५३॥

हे नाथ! मैं कुटुम्बी ग्राममें रहता हूँ और मेरा नाम भी कुटुम्बी है। यदि किसी समय मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप शीघ्र ही मुझे सूचना करना। यों प्रार्थना पुरस्सर पुन: नमस्कार कर चला गया ॥५४॥

उधर धन्यकुमार भी रवाना हुआ तो उसे रास्तेमें जाते वक्त पूर्वोपार्जित शुभोदयसे मनोहर तथा निर्जन्तु किसी शुद्ध स्थानमें बैठे हुये अवधिज्ञानसे युक्त, निरन्तर धर्मोपदेश देनेवाले, तीन जगतके जीवोंका हित करनेवाले और गुणोंके समुद्र मुनिराज दीख पड़े ॥५६-५७॥

धन्यकुमार उनके दर्शनसे हृदयमें बहुत आनन्दित होकर उनके समीप गया। मुनिराजको तीन प्रदक्षिणा दी और हाथ जोड़कर देवताचर्य उनके चरणोंको अभिवन्दना की तथा धर्म प्राप्तिके लिये उनके पास हर्षपूर्वक बैठ गया ॥५८-६०॥

मुनिराजने भी उसे धर्मवृद्धि देकर उसकी शुभाशीर्वादसे प्रशंसा की और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे—कुमार! जिस धर्मके प्रभावसे पद पदमें तुम्हें खजाना मिलता है, बड़ा भारी लाभ होता है, सर्व जगह मान्यता होती है जो इस लोक तथा परलोकमें हित करनेवाला हैं, स्वर्ग सुख तथा शिवसुखका आधार है और जिनेश्वर, चक्रवर्ती तथा इन्द्रपदकी सम्पत्तिका देनेवाला है उसी धर्मका तुम्हें सेवन करना चाहिये ॥३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि धर्मके फलसे धर्मात्माओंको तीन जगतकी लक्ष्मी-जन्य सुख, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ और उत्तम२ पदकी प्राप्ति होती है ॥६४॥ उस धर्मको जिन भगवानने मुनि-धर्म तथा गृहस्थ-धर्म इस प्रकार दो भेद रूप कहा है। उसमें मुनिधर्म सम्पूर्णतासे होता है। और गृहस्थ धर्म एक देश रूप दयामय है। घोर मुनिराज मुनिधर्मके द्वारा उसी पर्यायसे अनन्त सुख शाली मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥६५-६६॥

अथवा सर्वार्थसिद्धिके सुखका उपभोग कर सर्वाङ्गावस्था को प्राप्त होते हैं व बड़ा भारी चक्रवर्ती पद पाते हैं अथवा चरम शरीर होकर उत्तम२ तपश्चरणके द्वारा क्रमसे मोक्ष चले जाते हैं ॥६७-६८॥ और गृहस्थधर्मके द्वारा बुद्धिमान पुरुष सर्व ऋद्धियोंके समूहका आश्रय भूत अच्युत स्वर्ग पर्यन्त स्वर्गमें वा सत्पुरूषोंके द्वारा सेवनीय तथा सम्पत्तिके आकर अर्चनीय उत्तम कुलमें अवतार लेते हैं और वहां सुख भोग कर अनुक्रमसे तपश्चरण द्वारा कर्मोका नाश कर मोक्ष चले जाते हैं ॥६९-७०॥

हे चतुर ! इन दोनों धर्मका मूल कारण, चंद्रमाकी तरह निर्मल, निःशंकादि आठ गुणोंसे युक्त शंकादि पच्चीस मल रहित, जिन भगवान तथा इन्द्रादिकी संपत्तिका कारण, उत्तम२ सुखका आकर सम्यग्दृष्टि पुरुषोंके साथ जाने वाले शुद्ध सम्यक्त्वको समझो। वीतराग भगवानको छोड़ कर सुखोपभोग तथा मोक्षके कारण त्रिभुवन अर्चनीय और कोई देव नहीं हैं, न हुये तथा न होंगे ॥७३॥ जिन भगवानके कहे अहिंसा धर्मको छोड़कर दूसरे धर्म सब ऋद्धि तथा सुखके कारण और सत्य नहीं हैं ॥७४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरूसे बढे सत्पुरुषोंके सत्कार करने योग्य तथा स्वर्ग मोक्षके मार्गका उपदेश कर-नेवाले और गुरू नहीं हैं ॥७५॥ सर्वज्ञ भगवानके कहे हुये सात तत्वोंसे बढ़कर सत्य तथा सम्यग्ज्ञानके कारण और तत्व इस संसारमें नहीं हैं ॥७६॥

उत्तम पात्रदान छोड़ कर भोग तथा सुखका देनेवाला और दान नहीं हैं तथा बारह प्रकार तप छोड़कर कर्मोंका नाश करनेवाला और तप नहीं है ॥७७॥

इस प्रकार जिन भगवानके कथनमें जो बुद्धिमान पुरुषोंका निश्चय करना है तथा श्रद्धा और रूचिका रखना है, ये सब दर्शन रूप कल्पवृक्षके बीज है। क्योंकि संसारमें मनोमिलषित सुखका देनेवाला, तीन जगतके स्वामीयोंकी तथा जिन भगवानकी संपत्तिका कारण यही सम्यक्त्व है। ऐसा समझ कर आठ गुण युक्त, चंद्रकी कांति समान शुद्ध तथा पच्चीस दोष रहित सम्यग्दर्शनकी शुद्धि तुम धारण करो ॥७९–८०॥

तथा कहे हुये देव पूजनादि छह कर्म धर्मकी सम्प्राप्तिके लिये सदैव आचरण करो ॥८१॥ जिन पूजन, गुरुओंकी सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान ये गृहस्थों के नित्य करने योग्य छह कर्म पुण्यके कारण हैं ॥८२॥ भक्तिपूर्वक जिन मन्दिर तथा जिन प्रतिमा निर्माण कराकर अपनी शक्तिके अनुसार उत्तम २ तथा मनोहर आठ प्रकार पूजन द्रव्यसे प्रात दिन जो जिन प्रतिमाओंकी पूजा की जाती है, उसे बुद्धिमान पुरुष संपूर्ण अभ्युदयकी देनेवाली कहते हैं ॥८४॥

यही कारण है कि जिन भगवानको पूजनसे संपूर्ण सम्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्तियें प्राप्त होती हैं विघ्न समूह तथा गृहारंभमें होनेवाले पापका नाश होता है ॥८५॥

जो गृहस्थ उत्तम पात्र सद्गुरुओंकी प्रतिदिन अज्ञान तथा मोहके नाश करनेवाली और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रकी देनेवाली सेवा भक्ति सुश्रूषा तथा सदा आज्ञाका पालन अपने धर्म लाभके लिये किया करते हैं उसे गुरूपास्ति (गुरूसेवा) कहते हैं ॥८७॥ जो बुद्धिमान पुरूष मोक्षकी प्राप्तिके लिये सिद्धांतका अभ्यास करते हैं वह तथा सामायिक नमस्कार और ज्ञानाभ्यास आदि जितने पावन कर्म हैं ये सब स्वाध्याय कहे जाते हैं। [महर्षि लोग स्वाध्यायको त्रिभुवनवर्ति पदार्थोंके देखनेके लिये प्रदीप कहते हैं क्योंकि इसके द्वारा प्रचूर अज्ञानांधकारका नाश होता हैं तथा यह पंचेन्द्रिय रूप शत्रुओंका घातक है ॥८८-८९॥

यही हेतु है कि इसी ज्ञानसे—सत्पुरूष हेयोपादेयका, भले बुरेका, देवशास्त्र और गुरुकी परीक्षाका, धर्मके स्वरूपका, मोक्षमार्गका, खोटे मार्गका तथा झूठे सच्चे धर्मका स्वरूप जानने लगते हैं और जो अज्ञानी होते हैं वे जैसे जन्मांध पुरुष हाथीका ठीक२ स्वरूप नहीं जान सकते वैसे ही कभी कुछ भी नहीं जानने पाते हैं ॥९०-९१॥

इस प्रकार स्वाध्यायका फल समझकर बुद्धिमान पुरुषो को सिद्धांतशास्त्रमें प्रवेशके प्रतिबन्धक अज्ञानका नाश करनेके लिये और ज्ञानकी सम्प्राप्तिके लिये शिव-सुख साधक स्वाध्याय करना चाहिये ॥९२॥

बारह प्रकार उत्तम व्रतोंके पालन करनेकों, पंचेन्द्रिय रूप शत्रुओंके वश करनेको, तथा हृदयमें प्राणियोंकी दया करनेको गणधर भगवान संयम कहते हैं। यह संयम निरु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्तर पुण्यकी सम्प्राप्ति करनेवाला हैं और पापाश्रवका निरोधक है ॥९३-९४॥ अष्टमी तथा चतुर्दशीके दिन अथवा और व्रतादिमें नियमपूर्वक उपवास करनेको दूसरा कायक्लेश तप कहते हैं ॥९५॥

बुद्धिमान पुरुष बारह प्रकार व्रतोंके द्वारा जो तप आचरण करते है वह संपूर्ण तप, कर्मके भस्म करनेके लिये अग्निके समान है ॥९६॥ इसके द्वारा गृहस्थोंके गृह संबंधी आरंभसे होनेवाला पाप नाश होता है तथा गुणोंके साथ ही साथ धर्म रूप कल्पवृक्ष वृद्धिगत होता है ॥९७॥

इस प्रकार समझकर पर्वतिथिमें बुद्धिमानोंको उपवासादि पूर्वक निर्मल तप आचरण करना चाहिये और फिर उसे प्राणोंके नाश होनेपर भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥९८॥ प्रतिदिन दान देनेके लिये अपने गृह द्वारपर खड़े होकर निरीक्षण करना और उत्तम पात्र मिलनेपर उन्हें दान देना चाहिये। क्योंकि दान सुखका आकर है, अपना तथा दूसरेका हित करनेवाला है, धर्म तथा सुखका देनेवाला है, गृहारंभसे होनेवाले पापका नाश करनेवाला है और भोग भूमिकी विभूतिका प्राप्त करानेवाला है ॥९९-१००॥

इन छह कर्मोंके द्वारा गृहस्थोंको निरन्तर उत्तम धर्मकी प्राप्ति होती रहती है तथा गृहारंभसे होनेवाले पाप कर्मका नाश होता है ॥१०१॥

हे कुमार ! इस प्रकार समझकर तुम्हें स्वर्ग सुखके देनेवाले पावन, गृहस्थोंके छह कर्म नित्य करने चाहिये। क्योंकि इन्हींके द्वारा परंपरा मोक्ष सुख भी मिल सकेगा और देखो ! पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये बारह व्रत भी गृहस्थ धर्ममें पाले जाते है गृहस्थ धर्म भी पापका नाश करनेवाला और स्वर्ग सुखका प्रधान कारण है। इसलिये कुमार धर्मकी प्राप्तिके लिये तुम्हें श्रावकोंके उत्तम व्रत धारण करने चाहिए तुम इनके द्वारा उत्तम सुख तथा परंपरा मोक्ष भी प्राप्त कर सकोगे। सदैव सद्धर्मका संपादन करो; धर्महीका आश्रय लेओ क्योंकि धर्म गुणोंका खजाना है। धर्मके अनुसार उत्तम मार्गपर चलो, उसे प्रतिदिन अभिवन्दना करो, धर्मसे तुम्हें सब वस्तुओंको अपार सिद्धि होगी। देखो धर्मका मूल दया है उसे कभी मत भूलो, धर्ममें सदा निश्चल चित्त रहो यही उत्तम धर्म तुम्हारी सदा रक्षा करेगा।

तुम जानते हो कि धर्म अनन्त सुखका समुद्र है और दुःखका नाश करनेवाला है, बुद्धिमान लोग सदा धर्मका उपार्जन करते हैं, धर्मके द्वारा जल्दी ही सब गुण मिल जाते हैं, धर्मको मैं भी नमस्कार करता हूँ। धर्मको छोड़कर और कोई शिव–सुखका देनेवाला नहीं कहा जा सकता धर्मका मूल क्षमा है, धर्ममें अपने चित्तको एकाग्र करता हूं, हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्रमें धन्यकुमारके विघ्नोंमें शांति तथा धर्म श्रवण नाम द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अधिकार

विश्वविघ्नहरान्वन्दे पञ्च, सत्परमेष्ठिनः ।
विश्वश्रीधर्मकर्तृश्च, विश्वबन्धून्गुणार्णवान ।।

धन्यकुमार मुनिराजके द्वारा धर्मोपदेश सुन कर बहुत खुशी हुआ और अपने योग्य व्रत नियमादि श्रद्धापूर्वक ग्रहण किये। बाद मुनिराजको सभक्ति अभिवन्दना कर हाथ जोड़-कर पूछा—

नाथ! आप तीन जगतके जीवोंका हित करनेवाले हैं। आपसे मुझे कुछ पूछना है। वह यह कि क्या कारण है जिससे मेरे भाई लोग तो मुझसे द्वेष करते हैं और किस पुण्यसे माता प्रेम करती हैं? तथा पद२ में मुझे बहुत संपत्ति मिलती है। क्या आप कृपा कर ये सब बातें मुझसे कहेंगे।

मुनिराज धन्यकुमार पर अनुग्रह कर उसके पूर्व जन्मको जीवनी सुनाने लगे—कुमार! जरा अपने चित्तको कहीं जाने न देना, मैं तुम्हें पूर्व जन्मकी कथा कहता हूँ। क्योंकि उससे तुम्हारी हृदयमें संसारमें भय उत्पन्न होगा, धर्ममें अभिरुचि होगी, पापसे डरोगे और दान व्रत नियमादिमें उत्तम विचार होंगे। तुम्हारी कथासे सर्व साधारणका भी उपकार हो सकेगा।

भारतवर्ष—मगधदेश, उसके अन्तर्गत भोगावती नाम नगरी थी। उसके स्वामीका नाम कामवृष्टि था। उसकी भार्या मृष्टदामा थी। उनके घरमें सुकृतपुण्य नामका एक नौकर था जब मृष्टदाना गर्भवती हुई तब ही उसके पापोदयसे कामवृष्टि मर गया। बाद वह गर्भ जैसे२ बढने लगा तैसे२ सब लोग गर्भके प्रचण्ड पापसे धराशायी हुये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्रका जन्म होते ही मृष्टदानाकी माताने भी परलोक यात्रा की। धन धान्यादि सब वस्तुएं नष्ट हो गई। साथ ही साथ पुण्य कर्म भी नष्ट हुआ।

सच कहा है—जब अभागा कुपुत्र गर्भमें आता है तब कुटुम्ब, धन, सुख और पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं। और घरमें दरिद्रताका वास हो जाता है। पापी पुत्रका पैदा होना सर्वथा बूरा हैं। समझो! पुत्र, कलत्र आदि जितनी वस्तुएं जो दुःखकी कारण होती हैं वह सब पापका फल है, इस लिये जो बुद्धिमान हैं उन्हें अनिष्ट संयोगका प्रधान कारण पाप प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिये। प्रत्युत सदा धर्मका उपार्जन करना उचित है।

देखो! इस बालकने पाप कर्मके सिवाय कभी पुण्य कर्म नहीं किया यही कारण है जो आज इसको यह दारूण दशा हुई। यही समझ मृष्टदानाने भी अपने अभागे पुत्रका नाम अकृत्य-पुण्य रक्खा। सब धन तो पहले नष्ट हो चुका था। जब बिचारी मृष्टदानाको पेट भरना तक मुश्किल हो गया तब वह कुछ उपाय न देख लाचार होकर दूसरेके घर का पोसना पीसकर बहुत दुःखके साथ अभागे पुत्रका पालन पोषण करने लगी।

उधर कामवृष्टिके मर जाने बाद पुण्योदयसे उसका नौकर वही सुकृतपुण्य भोगावतीका मालिक हो गया था। उस अवसरमें धन्यकुमारने अवधिज्ञानी मुनिराजको नमस्कार कर पूछा—भगवन्! बालकने पूर्व जन्ममें ऐसा कौन पाप कर्म किया है और कैसे खोटे काम किये हैं जिससे आज इसे यह दशा देखनी पड़ी?

मुनिराज उसकी कथा कहने लगे जिसके सुनने मात्रसे बुरे कामोंके करनेमें भय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी देशमें भूतिलक नाम सुन्दर नगर था। उसमें महाधनी धनपति वैश्य रहता था। धनपति बुद्धिमान, महादानी व्रती और सदा शुभ कर्म करनेवाला था।

एक दिन उसने अपने निर्मल चित्तने विचारा कि लक्ष्मी पुण्यके उदयसे होती है। मेरी समझमें उसका फल केवल पात्रदान होना चाहिये। परन्तु जो उत्तम पात्र हैं वे तो केवल आहारको छोड़कर और कुछ भी कभी नहीं लेते हैं, और न निग्रन्थ साधुओंको वस्त्र, धनादि दिये ही जा सकते हैं क्योंकि उनसे उनकी निर्ग्रंथतामें बाधा आती है।

इसलिये बड़े२ ऊंचे जिनालय बनवाये जावें, जिन भगवानकी प्रतिमायें बनवाई जावें और उनकी प्रतिष्ठा करवाई जावे तो अवश्य इन शुभ कर्मोंके द्वारा लक्ष्मी सार्थक हो सकती है और कल्पलताकी तरह इच्छित फल दे सकती है। क्योंकि देखो !

जिन मन्दिरोंमें कितने जिन भगवानकी पूजासे, कितने नमस्कार, स्तवन, दर्शन, गीत, नृत्य और वादित्रसे, कितने अभिषेकसे, कितने धर्मोपकरणादिके दानसे, कितने उद्यापनादिसे और कितने यात्रा करनेसे बड़े भारी पुण्य कर्मका उपार्जन करते हैं। उनमें योगिराज भी रहते हैं उनके द्वारा धर्मकी प्रवृति होती है और धर्म द्वारा भव्य पुरुष स्वर्गादि सुखके अनुभोक्ता होते हैं इत्यादि नाना तरहके अच्छे२ कर्मोंसे गृहस्थ लोग जिन मन्दिरोंमें पुण्य सम्पादन किया करते हैं।

इसलिए यदि यह कहा जाय कि धनी लोगोंको लक्ष्मी का वास्तविक फल जिन मन्दिरका निर्माण तथा उद्धार कराना छोड़कर और कुछ नहीं है तो कुछ बुरा नहीं कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा सकता। क्योंकि सहस्त्रों वर्ष पर्यन्त उनमें जिन प्रतिमायें पूजी जाया करेंगी।

जो लोग प्रतिमायें बनवाते हैं उन्हें कितना पुण्य बन्ध होता होगा उसे कौन कह सकता है? इसलिये धनी लोगोंको जिन प्रतिमायें बनवानी चाहिए। उनके द्वारा वे स्वर्ग तथा शिव-सुखके भोगनेवाले हो सकेंगे। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो लोग जिन प्रतिष्ठा करवाते हैं उनको कितना पुण्य कर्म-बन्ध होता है उसकी संख्या मैं नहीं जानता क्योंकि प्रति-ष्ठाके द्वारा धर्मको वृद्धि होती है।

यही हेतु है कि प्रतिमा बनवानेवाले बहुत पुण्य कमाते हैं। कितने मिथ्यादृष्टि तो जिन प्रतिमा तथा प्रतिष्ठा करवाकर ही जैनी होते हैं और तरह नहीं। तात्पर्य यह कि जिनप्रतिमा और जिनप्रतिष्ठा पुण्यकी कारण हैं इसलिए धनिक लोग जिनालय क्यों न बनवावें।

इसी विचारसे धनपति सेठने बड़ा विशाल सुन्दर जिना-लय निर्माण करवाया और सुवर्ण रत्नमयी जिनप्रतिमायें बनवाई। चारों संघको बुलवाकर उन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा विधिके अनुसार बहुत धन लगाकर प्रतिष्ठा करवाई और जिनालयमें देनेके लिए सुवर्ण और रत्नमयी शृंगार कलश प्रभृति धर्मोपकरण बनवाये।

उन रत्नमयी प्रतिमाओंकी प्रसिद्धि सब जगह फैल गई। उसे सुनकर किसी दुर्व्यसनी चोरने लोभमें आकर विचारा कि उस जिनालयकी रक्षाके लिए बहुत रक्षक नियत हैं सो बिना साधू वेष धारण किये किसी तरह उसके भीतर नहीं जा सकूंगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार विचार कर वह मायावी लोभके वश हो ब्रह्मचारी बन गया कपटभावसे कायक्लेशादि तपश्चरण करने लगा और भोले लोगोंमें अपने गुणोंकी प्रशंसा करने लगा। ऐसे ही देशोमें घुमता हुआ भूतिलकपुरमें आ पहुंचा।

जब लोगोंके मुखसे ब्रह्मचारीकी धनपतिने प्रशंसा सुनी तो उसी वक्त उसके पास गया और नमस्कार कर उसे अपने मन्दिरमें लिवा लाया। कुटलात्मा ब्रह्मचारी भी झूठे तपश्चरणसे लोगोंको अनुरक्त करके बगुलेकी तरह जिनालयमें रहने लगा।

किसी दिन धनपतिने पापी ब्रह्मचारीसे कहा–महाराज! मुझे व्यापारार्थ दूसरे देश जाना है इसलिये आपसे प्रार्थना है कि जबतक मैं पीछा न लौटूं आप जिनालयकी रक्षा करना।

ब्रह्मचारीने यह कहकर टाल दिया कि हम यहां नहीं रहेंगे (सच है कि जो लोग अंतरङ्गके काले होते हैं, उनकी भीतरी बातें कौन जान सकता है) ठीक यही हालत सरल स्वभावी धनपतिकी हुई। वह ब्रह्मचारीके भीतरी दिलकी बात न जानकर उसके इन्कार करने पर और भी आग्रह करने लगा और किसी तरह उन्हें रक्षाका भार सौंपकर आप चला गया।

इधर मायावी ब्रह्मचारीका दाव लग गया सो उसने व्यसनोंके द्वारा जिनालयके सब उपकरणोंको तीन तेरह कर दिये। परन्तु यह पाप कबतक छिप सकता था सो ब्रह्मचारीके शरीरमें कोढ फूट निकला, सारा शरीर दुर्गन्धमय हो गया, उसके द्वारा बड़ा ही दुःखी होने लगा।

सच कहा है—अधिक पापका अथवा पुण्यका फल प्रायः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी वक्त उदय हो आता है। पापका फल बहुत बुरा होता है और पुण्यका अच्छा होता है। पापीयोंको इसी भवमें नाना तरहके रोगादि तथा परलोकमें नरक दुःख भोगने पड़ते हैं और पुण्यात्माओंकी सब प्रशंसा करते हैं, बड़ी ही प्रतिष्ठा होती है, जगतमें यश फैलता है और परभवमें भी उत्तम गति मिलती है।

जो लोग देव गुरू और शास्त्र की पूजन करते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं और जो पापी लोग निर्माल्यके खानेवाले है वे नरकमें जाते हैं। उसके वंशका सर्वनाश हो जाता है, धन चला जाता है, नाना तरहके दारूण रोग भोगने पड़ते हैं। इतने पर भी छूटकारा न होकर अन्तमें उनके लिये नरक द्वार तैयार रहता है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि—हलाहल विष खा लेना बहुत ही अच्छा है फिर उससे उसी वख्त भले ही प्राण चले जाये परन्तु निर्माल्य खाना अच्छा नहीं। कारण इसके द्वारा अनन्त भव बिगड़ जाते हैं।

इस बातको ध्यानमें रखकर बुद्धिमानोंको कभी देव गुरू शास्त्रका निर्माल्य नहीं लेना चाहिए। किन्तु जैसे विषका उपयोग बुरा है उसी तरह निर्माल्य भी बुरा समझ कर छोड़ देना चाहिये।

ब्रह्मचारी उसी भीषण अवस्थामें वहीं रहा करता था। इस वक्त उसकी और भी दशा बिगड़ गई थी। सब अंग प्रत्यंग कोढके मारे गले जा रहे थे देखनेमें बड़ो घृणा पैदा होती थी, आकृति भयानक हो गई थी, हरवक्त रौद्र भाव बने रहते थे। थोड़ेमें यों कहो कि वह खासे दुःख समुद्रमें डूबा हुआ था।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

इतनेमें धनपति भी निर्विघ्न विदेश यात्रासे लौट आया। उसके देखते ही ब्रह्मचारीको बड़ा क्रोध आया। उसके मुंहसे यही आह निकली कि मरा भी नहीं जो पीछा चला आया?

इतना कहकर सेठके उपर दारूण रौद्र ध्यान करने से उसकी वेदना और भी बढ़ गई और इसी दशामें बड़े ही कष्टसे मर गया। मरकर निर्माल्य भक्षणके पापसे सातवें नरकमें गया। वहां अत्यन्त दुर्गन्धित उपपाद प्रदेशमें ऊपर पांव तथा नीचे मुख होकर उत्पन्न हुआ और मुहूर्त मात्रमें हूंडक संस्थान तथा कुत्सित शरीर धारण कर पृथ्वी पर गिरा। गिरते ही पृथ्वीके आघातसे पांचसौ योजन उछला और पीछा गिरा शरीरके खण्ड२ हो गये। ❋

जैसे वृक्षसे गिरकर पत्ता वायु वेगसे पृथ्वीपर लौटा करता है ठीक वही हालत इसकी नरकमें थी। नरक बड़ा ही भयानक होता है, उसमें दुर्गन्धका अन्त नहीं एक साथ हजार बीछूओंके काटेकी तरह दुःख होता है, चारों ओर वनकी तरह कांटोसे संकीर्ण होता है।

जब यह वहां देखता है तो इसे भयानक लाल२ नेत्र किये हुये और दारुण कम करनेवाले नारकी लोग दीख पड़े और ठीक ऐसी ही सर्व दुःखोंकी स्थान, अस्पर्शनीय अति भयानक, नरकोंकी भूमि दीख पड़ी। तब यह विचारने लगा—

मै कौन हूँ? यहां क्योंकर कहांसे आया? यह स्थान इतना भीषण क्यों है? और ये भयंकर लोग कौन हैं?

❋ नारकियों शरीर पारेकी तरह होता हैं यह खण्ड २ होकर भी पीछा मिल जाता हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारते ही इसे विभंगा अवधि उत्पन्न हो गई। उसके द्वारा अपनेको भयंकर नरकमें गिरा हुआ समझकर पूर्व जन्मके बूरे कर्मोको विचारने लगा—

हां! पांच इन्द्रियोके विषयमें आसक्त होकर मुझ पापीने सात व्यसन सेवन किये थे, अभक्ष्य मधु मांसादि खाये थे, स्वच्छन्द होकर मदिरा पान किया था, चोरी और मायाचारादिके द्वारा दूसरोंका धन लूटा था, दूसरोंकी स्त्रियोंसे बलात्कार किया था, जीवोंकी हिंसा की थी झूठे और कडुवे वचन बोले थे, जिनालयके उपकरणादिका हरण किया था, आर्त, रौद्र, दुर्लेश्या, बुरी चेष्टा और दूसरोंको दुःख देना आदि दुराचारोंसे निरन्तर पाप उपार्जन किया था उसी महापापसे यहां यह दारूण दुःख भोगना पडा है।

यह दुख कितना दुरन्त और दुःसह है जिसका संसारमें कोई उपमान नहीं दीखता। पाप तो मैंने बहुत ही कमाया और पुण्यके कारण न तो कुछ व्रत नियमादि ही पालन किये न नमस्कार मन्त्रका ध्यान किया, न जिन पूजन की न गुरुओंके चरणोंकी सेवा की, न इन्द्रियें वशमें की, न उत्तम२ पात्रोंको दान दिया और न ध्यान ही किया अथवा थोडेमें यों कहो कि शुभ कर्मोके द्वारा धर्मका लेश भी सम्पादन नहीं किया जो उत्तम गतिके सुखका कारण और दुर्गति से रक्षा करनेवाला है।

यही कारण है कि—मुझे दुःख प्रचुर—और महा निंद्य दुःख रूपी समुद्रके बीचमें जन्म लेना पड़ा। हा! मैं पाप शत्रुके द्वारा पूर्णरूपसे जकड़ा हुआ हूँ। मैं कहां जाऊं? और किससे जाकर अपनी दुःख कहानी सुनाऊं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस समय पापका बड़ा ही दारूण उदय होनेंसे मुझे तो यहां कोई रक्षक भी नहीं दीख पड़ता। हा! इस घोर दुःख समुद्रसे क्योंकर मैं पार हो सकूंगा? हा! दैव (कर्म) ने मेरे शिर पर बड़ी भारी यातनाका पहाड़ गिरा दिया।

यह तो इधर अपने प्रकृत कर्मोंकी प्रायश्चित वह्नीसे भीतर बाहर जल ही रहा था कि इतनेमें कितने नारकियोंने क्रोधित होकर इसके शरीरके पुद्गरादि शस्त्रोंसे खण्ड२ कर दिये, कितने निर्दयी पापियोंने यह कह कर कि देख ये वे ही नेत्र हैं न? जिससे बुरी तरह दूसरेको ओर देखा था, झटसे नेत्र उखाड़ लिये, कितने दुर्बुद्धियोंने हृदयमें उत्पन्न हुये पाप विकारसे उसके उदरको फाड़कर सब आतें तोड़ डाली, कितनोंने क्रकच (करोत) के द्वारा उसके शरीरको चीर डाला, कितने अधम शरीरके तिल बराबर खण्ड२ करके और अधिक दुःख देने लगे।

नारकियोंके शरीरके टुकड़े पारेकी तरह मिल जाते हैं क्योंकि जबतक आयुकी स्थितिका नाश न होगा तब तक उनकी मृत्यु न होकर ऐसी ही अवस्था होती रहेगी।

बिचारे ब्रह्मचारीके जीवका एक ओर तो वेदनासे छूटकारा हुआ ही नहीं था कि इतनेमें कितने नारकियोंने आकर प्रचुर दुःख देनेकी इच्छासे वहांसे उठा लाकर उसे गरम तेलकी कढाईमें डाल दिया। सारा शरीर देखते२ जल गया।

उसकी शांतिके लिये वहांसे निकालकर वैतरनी नदीके दुर्गंधित जलमें डुबकी लगाई परन्तु वहां भी उसे शांति न मिली। क्योंकि वह जल मांस तथा खूनकी तरह अत्यन्त ही ग्लानिकारक होता है सो उससे सन्ताप और भी अधिक बढ़ गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहां भी जब देखा कि शांति नहीं है तब इस इच्छासे कि वनमें जरूर ही कुछ न कुछ आराम मिलेगा वहांसे चलकर वनमें पहुंचा। और किसी वृक्षके नीचे बैठना ही चाहता था कि इतनेमें प्रचण्ड वायु चलनेसे खड्गकी तरह तीक्ष्ण पत्र ऊपरसे गिरे। गिरते ही शरीर खण्ड खण्ड हो गया।

वहां से भी उसी दशामें दूसरे वनमें गया सो,वहां वैक्रियक सिंह व्याघ्रादि हिंस्र जीव खाने लगे उसी वक्त कितने नारकी लोग और भी आकर उसे यह इशारा करके कि देख! पहले तो बहुतसी परस्त्रीकी जीवनी खराब की थी और अब भी उस सुखका अनुभव कर ऐसा कहकर बलात् जलती हुई लोहकी पुतलीसे आलिङ्गन करा देते थे।

कितने संडासीके द्वारा उसके मुखको जबरदस्तीसे चीर कर मद्यकी तरह गरम तांबा पिलाते थे। जितने दुःखह तथा सब दुःखके कारण रोग हैं वे सब नारकियोंके शरीरमें स्वभाव ही से हो जाते हैं।

उन्हें प्यास इतना अधिक सताती है कि यदि सारा समुद्र पी जांय तब भी वह न मिटै इतने पर भी जलकी एक बुन्द तक नहीं मिलती।

संसार मात्रके अन्नसे भी न मिटनेवाली भूख हृदय जला देती है परन्तु तिल मात्र तक अन्न खानेको नहीं मिलता वहां शीत इतनी है कि एक लाख योजन मनका लोह पिंड डालते ही पानी हो जाता हैं, और इतनी ही अधिक गरमी रहती है।

इस प्रकार नरकमें परस्परमें दिये हुये और मन वचन कायकी बुरी वृत्तिसे उपार्जन किये हुवे महा पापके उदयसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीत उष्ण क्षुधा तृषादिकी भीषण यातनाओंका उस ब्रह्मचारी के जीवने निरन्तर अनुभव किया। वाणीमें भी उतनी शक्ति नहीं है जो नारकीय पीडाका वर्णन कर सके।

उस पापीने तेतीस सागर पर्यंत वहीं अनेक तरहके दुःख भोगे, जहां दुःख समुद्रमें डूबे हुये नारकियोंको निमिष मात्र भी सुख नहीं होता है।

जब उसको नरक स्थिति पूर्ण हुई तब वहांसे निकल कर पापोदयसे स्वयंभूरमण समुद्रमें महामत्स्य हुआ वहां भी उसने बहुत दिनों तक जीवोंके भक्षणसे फिर भी सप्त नरकका पाप उत्पन्न किया। सो आयु पूर्ण होते ही पीछा उसी नरकमें गया जिसके दुःखोंका वर्णन ऊपर किया जा चूका है।

वहां पहलेको तरह दुःखानुभव कर निकला और भव समुद्रमें—सब दुःखोंके कारण त्रस तथा स्थावर योनियोंमें चिरकाल भ्रमण कर यही अकृतपुण्य हुआ है।

देखो ! इस अकृतपुण्यने पूर्व जन्ममें मायाचारके द्वारा पाप उपार्जन किया था उसीके भीषण फलसे इसे दारूण नरक यातना भोगनी पड़ी है। यही विचार कर बुद्धिमानों को पाप कर्मसे आत्माकी रक्षा करनी चाहिये और व्रत संयमादिक ग्रहण करने चाहिये जिससे सुख मिल सके यही कहनेका सार है।

धर्म और अधर्मके निरूपण करनेवाले जिनेन्द्र और उसके फलोंको प्राप्त हुये निरूपम सिद्ध भगवान, पावन धर्मका उपदेश देनेवाले आचार्य और उपाध्याय तथा साधु ये सब मिलकर मुझे अपने२ गुणोंका लाभ करावें क्योंकि त्रिभुवनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा और महाराजा इन्हींकी स्तुति करते हैं इसलिये ये ही स्तवनके पात्र हैं।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्रमें *अकृतपुण्यके भवान्तरका वर्णन नाम तृतीय* अधिकार समाप्त हुआ ॥३॥

चतुर्थ अधिकार

अकृतपुरूषके दानका वर्णन

जिनान्धर्माधिपान्वन्दे सिद्धान्धर्मफलाङ्कितान् ।
सूरींश्च पाठकान्साधून्धर्मान्धर्मप्रवर्तकान् ॥

एक दिन दरिद्री और दीन अकृतपुण्य सुकृतपुण्यके चनेके खेत पर चला गया और नौकरको तरह सुकृतपुण्यसे बोला—

सुकृतपुण्य ! देखो, ये और लोग जो चने उखाड़ रहे हैं मैं भी इनकी तरह यदि चने उखाडूं तो क्या मुझे कुछ देओगे ?

उसके कातर वचन सुनकर सुकृतपुण्य विचारने लगा हा ! इस संसारमें मनुष्योंके कर्मकी विचित्रता ! जो कभी स्वामी होते हैं वे तो नौकर हो जाते हैं और जो नौकर होते हैं वे स्वामी हो जाते हैं।

हाय ! इसके पिताके प्रसादसे मेरी यह दशा हुई जो मैं धनिक और गांवका स्वामी हो गया और यह भी उसीका

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पुत्र है जिसकी आज यह दशा ! जो कर्मोका मारा हुआ मुझसे भी याचना कर रहा है।

इस दुष्ट देवको धिक्कार है जो समय मात्रमें उलटेका सीधा और सीधेका उलटा कर देता है। अथवा यों कह दो कि पापके उदयसे धनी दरिद्री हो जाते हैं और पुण्यके उदयसे निर्धन धनी हो जाते हैं।

यही विचार कर जो निर्धन हैं उन्हें तो धन लाभके लिये पुण्य उपार्जन करना चाहिए और जो धनिक है उन्हें विभव वृद्धिके लिये सब पाप कर्म छोड़ने चाहिये।

सुकृतपुण्यने उसकी दीन दशा देखकर उसी वक्त कितने ही धनके भरे हूये सुवर्णके कलश उसे दिये। परन्तु अकृतपुण्यका पाप कर्म इतना प्रचण्ड था जो हाथमें धरते ही वे अंगारकी तरह जलाने लगे। उन्हें देखकर अकृतपुण्य बोला—

क्यों भाई ! सबके लिये नो तूं चने दे रहा है और मेरे लिये ये अङ्गार ! ऐसा क्यों ? तब सुकृतपुण्यने समझ लिया कि अभी इसके दारुण पापका उदय है। क्या किया जाय ?

भाई ! मेरे अंगार तूं मुझे दे दे और जितने चने तू ले जा सकता है उतने गठरी बांधकर खेतसे ले जा। उसके कहनेके अनुसार अकृतपुण्य जितने चने अपनेसे उठ सके उतने सिरपर धरकर घर चला गया।

चने देखकर उसकी माताने कहा ये चने तू कहांसे लाया है ? उत्तरमें अकृतपुण्यने कहा माता ! मैं सुकृतपुण्यके खेत पर गया था वहीसे चने लाया हूं। सुनकर माता बहुत ही दुःखीनी हुयी और कहने लगी—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाय ! जो पहले मेरा नौकर था आज पापके उदयसे मेरा पुत्र उसीका नौकर हुआ, जो बुद्धिमान हैं उन्हें जहां पूर्व अवस्थामें नाना तरहके ऐश आराम किये गये हैं वहीं फिर नौकरकी तरह रहना उचित नहीं है ठीक वही हालत अभी मेरी है। धन प्रभुत्व सब तो नष्ट हो चूका और दरिद्रता सामने खड़ी हैं। इसलिये कहीं अन्यत्र ही जाना चाहिये। फिर वहां दुःख हों अथवा सुख ! क्योंकि पाप और पुण्यका फल विना भोगे नहीं छूटता है।

यही विचार कर अकृतपुण्यकी माताने चनेका पाथेय बनाया और पुत्रको साथ लेकर कहीं अन्यत्र जानेके विचार से प्रयाण यात्रा कर दी। सो चलती२ अवन्ती देशके अन्तर्गत सीसवाक गाममें पहुंची और पुत्रका मार्गश्रम दूर करनेके लिये ग्रामके स्वामीके गृहाङ्गणमें बैठ गई।

स्वामीका नाम था बलभद्र। उसे देखकर बलभद्रने पूछा—माता तुम कहांसे आई हो ? और यहांसे किस लिये कहां जाओगी ! इतना पूछने पर भी बिचारी लज्जाके मारे कुछ उत्तर न दे सकी तब बलभद्रने फिर आग्रहके साथ पूछा—तब बोली—

भाई ! पापके उदयसे जीवोंको बहुधा दुःख ही उठाने पड़ते है। मैं दैवकी मारी मगधदेशसे यहां आ निकली हूँ और वहीं जाऊंगी जहां मेरी जीविका हो सकेगी।

यह सुनकर बलभद्र बोला—यदि तेरी यह इच्छा है तो यहीं रह और मेरे घरमें भोजन बनाया कर। और तेरा पुत्र मेरे गायके बच्चोंको बनमें चरा लाया करेगा। मैं तुम्हारे लिये उचित वस्त्र भोजनका प्रबन्ध कर दूंगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसने बलभद्रके कहने को स्वीकार किया। बलभद्रने उसके रहनेके लिये अपने घरही के पास एक छोटी-सी झोपड़ी बनवा दी। माता पुत्र वहींपर रह कर उसकी नौकरी करने लगे और बलभद्रके द्वारा दिये हुये वस्त्र भोजनादिसे अपना निर्वाह करने लगे।

बलभद्रके सात पुत्र थे। उनके प्रातःकाल खानेके लिये सदा खीरका भोजन बना करता था। सो उन्हे खीर खाते हुये देखकर अकृतपुण्य भी अपनी मातासे रोज२ खीर मांगने लगा।

माताने उत्तर दिया—पुत्र ! तू नहीं जानता कि बिना पुण्यके ऐसा उत्तम खाना नहीं मिल सकता। तूने न तो परभवमें और न यहीं कुछ पुण्य कमाया है, अब तू ही कह, मैं तुझे कहांसे खीरका भोजन दे सकती हूं ? देख ! उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, धन धान्य और सुख ये सब धर्मके विना कभी नहीं मिलते है।

इसी तरह उसे उसकी माताने बहुत समझाया तो भी वह कर्तव्याकर्त्तव्यको न जान सका। इसीलिये प्रतिदिन वह खीर मांगा करता था और न मिलने पर रोने लगता था। उसे रोता हुआ देखकर बलभद्रके पापी पुत्र विचारेको थप्पडोंसे मारा करते थे।

इसी तरह मारते२ एक दिन उसे कहीं अधिक चोट लग गई सो उसका मुंह सूझकर विकृत हो गया।

अकृतपुण्यकी ऐसी दशा देखकर बलभद्रने उससे पूछा—क्यों यह मुख कैसे सुझ गया है ? उसने कहा—प्रभो ! खानेको खीर मांगा करता था परन्तु था तो पापका उदय, सो वह कैसे मिल सकती थी ? उसके बदलेमें आपके पुत्रोंने मेरी यह दशा की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह सुनकर बलभद्रको बड़ी ही दया आई सो उसने अकृतपुण्यकी मातासे कह दिया—तूं मेरे घरसे दूध, घी, चावल शक्कर अपने घर ले जाकर खीर बनाना और उसे पुत्रको खिलाकर उसकी अभिलाषा पूरी करना।

बलभद्रसे कहे अनुसार वह चांवल वगैरह अपने घर लाई और पुत्रसे बोली—

पुत्र ! आज मैं तुझे खीर खानेको दूंगी सो तूं घर पर जल्दी ही आ जाना। अकृतपुण्य मातासे यह कहकर कि-जैसा तुम कहती हो वही करूंगा, गायके बच्चोंको लेकर खुशीके साथ बनमें चला गया। उधर उसकी माताने खीर बनाई। इतनेमें मध्याह्न होते२ अकृतपुण्य भी घर पर आ गया। उसे वहीं बैठाकर और यह कह कर–पुत्र ! यदि कोई साधु हमारे घर पर आ जावें तो यहांसे जाने मत देना। उन्हें दान देकर बादमें अपन खावेंगे। दान, पुण्यप्राप्तिका कारण है। देख ! उत्तम पात्रको दान देनेसे हम लोगोंको जनम२ में ऐसा ही उत्तम आहार मिला करेगा और–सब तरहका सुख भी मिलेगा।

उत्तम दान देनेसे ही गृहस्थाश्रम सार्थक होता है दोनों लोकमें सुयश फैलता हैं, पुण्य कर्मका बन्ध होता है। दानी लोगोंको उत्तम सुख सम्पत्ति मिलती है। जिन लोगोंके यहां उत्तम पात्रोंको दान नहीं दिया जाता है उनका गृहस्थाश्रम पत्थरकी नावकी तरह है, पापका कारण है, अशुभ हैं और दुर्गतिको देनेवाला है।

देख ! हमने पहले दान नहीं दिया इसीसे तो आज दरिद्रताका दुःख सहना पड़ा है और यही कारण है कि हमको उत्तम२ भोजन नहीं मिलता। इसलिए दान जरुर देना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये । जिससे हमारा गृहस्थाश्रम और जीवन सफल होगा साथ ही उत्तम पुण्य तथा लक्ष्मीकी सम्प्राप्ति हो सकेगी, जल भरनेके लिए चली गई ।

इतनेहीमें पुण्योदयसे–बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्ररूप अमौल्यरत्नत्रयके आधार, दाताको सुख देनेके लिए दूसरे कल्पवृक्ष तपश्चरणके द्वारा क्षीण शरीरी, गुणराशि बिराजमान संसारके जीवोंका हित करनेमें सदा उत्सुक, अङ्ग पूर्वरूप समुद्रके पारगामी, ईर्यापथ रूप उत्तम नेत्रके धारक, सब वस्तुओंमें उदासीन, ऊंच नीचका विचार न करनेवाले, धर्मके उपदेशक इन्द्र, धरणेन्द्र, राजा महाराजा और भव्य पुरुषोंके द्वारा वंदनीय महनीय और स्तवनीय, लाभ अलाभ सुख दुःखादिमें समदर्शी, जितेन्द्रिय, शांतमूर्ति परम कारुणिक, दिशारूप वस्त्रके धारक, धोंर अनेक ऋषियोंसे विभूषि और सर्वोत्कृष्ट महापात्र सुव्रत मुनिराजको एक महीनेके उपवासके पारणाके दिन शरीर स्थितिके लिए बलभद्रके घरकी ओर आते हुये पासहीमें देखकर अकृतपुण्य शुद्ध मनसे विचारने लगा ।

अहा ! ये बड़े भारी साधु हैं । देखो ! इनके पास वस्त्रादि कुछ भी नहीं है । ये मेरे बड़े भारी पुण्यसे आये हैं । इन्हें मैं न जाने दूं । यों विचार कर सरल अकृतपुण्य पुण्यसे प्रेरणा किया हुआ झटसे उनके सामने जा खड़ा हुआ और अभिवन्दना कर बोला—

पूज्य ! माताने बहुत अच्छी खीर बनाई है वह आपके भोजनके लिये दी जावेगी । मेरी प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें तब तक जल लेकर मेरी माता भी आई जाती है । मुनिराज उसे यह समझाकर कि हमारा यह मार्ग नहीं है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रास्तेमें धारे२ चलने लगे, इतनेमें वह भी उनके आगे होकर जोरसे बोलने लगा—

तात ! मेरे ऊपर दया करो थोड़ी देर ठहरो और यहासे न जाओ बड़ी ही अच्छी खीर बनी है। कहो तो आपका समें बिगड़ा क्या जाता है।

इतनी प्रार्थना करने पर भी जब मुनिराज न ठहरे तो अकृतपुण्य उनके पांव पकड़ कर बोला—देखो ! अब तो मैंने अपने हाथोंसे आपको खूब ही जोरसे पकड़ रखे हैं देखू कैसे जा सकोगे ? महाराज ! आप बड़े ही दुर्लभ हैं।

आखीरमें मुनिन्द्रका भी दिल कुछ करुणाद्र हो आया सो उसे खेदित न कर थोड़ी देर तक समौन वहीं खड़े रहे। सच तो है साधु लोग सब पर दयालु होते हैं न ?

इतनेही में शुभोदयसे उसकी माता भी जल लेकर आ गई। मुनिराजको देखकर उसे बड़ी खुशी हुई जैसे दुर्लभ धनके अनायास मिल जानेसे खुशी होती है।

शिर परसे घड़ा जमीन पर उतारकर मुनिराजके चरणोंको नमस्कार किया और विभो ! तिष्ठ ! तिष्ठ !! तिष्ठ !!! कहकर स्वामीका पड़गाहन किया बाद—घरमें लिवा ले जाकर उनके बिराजनेको ऊंचा आसन दिया, जगद्गुरूको उस पर बैठाकर गरम जलसे उसके चरण कमल धोये और उस पाद-पवित्र जलको ललाटसे लगाकर उनकी पूजा की।

पश्चात् प्रणाम कर मन वचन कायकी शुद्धिसे अकृत-पुण्यकी माताने पुत्रके साथ२ बड़ा भारी शुभ पुण्य उपार्जन किया। कारण ये नवधा भक्ति पुण्य संपादनकी हेतु है। द्वार श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सप्त गुणोंसे युक्त हो उन उत्तम पात्र मुनिराजको मधुर प्राशुक, निर्दोष, तृप्तिकारक और तपवर्द्धक खीरका आहार देने लगी।

मुनिराजको आहार करते हुये देखकर अकृतपुण्य बहुत आनन्दित हुआ। उससे उसे बहुत पुण्यका बन्ध हुआ वह विचारने लगा—

अहा! आज मैं कृतार्थ हुआ, मैं धन्य हूं, पुण्यवान हूं; मैं बहुत ही सुखी हुआ, आजसे मैं महादाता कहलाया, जन्म सफल हुआ, गृहस्थाश्रम भी आज ही कृतार्थ हुआ, आज मुझे बहुतही पुण्य होगा और इसीसे स्वर्गादि सुख भी मिलेगा।

देखो न! आज मैं कितना भाग्यशाल हूँ जो देव, राजा, महाराजा, मनुष्य, विद्याधर, महनीय और वन्दनीय महापात्र मेरे घरमें भोजन कर रहे हैं, इन्हीं पवित्र भावनाओंसे शुद्ध हृदय अकृतपुण्यने अपने सरल भावोंके द्वारा बहुत कुछ पुण्य सम्पादन कर लिया, जो स्वर्गादि सुखका कारण है।

उधर जितेन्द्रिय योगीराजने भी खड़े२ शांत भावोंसे स्वाद वगैरहका विचार न कर पाणिपात्र आहार कर दाता को पावन किया और बाद उन्हें शुभाशीर्वाद देकर आप ध्यानाध्ययनके लिये वन विहार कर गये।

मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धिसे विभूषित थे। शास्त्रों का यह लेख है कि—जिस दाताके यहां उक्त ऋद्धिधारक साधुओंका आहार हो जाता है फिर उस दिन उसके यहां भोजन सामग्री कम नहीं होती, उससे चक्रवर्तिके सैन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तकका भोजन हो सकता है । ठीक ऐसा ही अकृतपुण्यके यहां ऋद्धिधारी मुनिराजका आहार होनेसे हुआ—भोजन सामग्री अक्षय हो गई ।

जब मुनिराज आहार करके चले गये तब अकृतपुण्यको माताने अपने पुत्रको यथेष्ठ जिमाया और आपने भी जीमा । परन्तु देखती है तो भोजन सामग्री उतनीको उतनी है । तब उसने अपने स्वामी बलभद्रको सकुटुम्ब भोजनके लिये बुलाया और उन्हें खुब जिमाया तब भी जब कमी नहीं हुई तो सारे शहरके लोगोंको जिमा दिया ।

उस महा दानसे माता पुत्रकी बहुत ही प्रसिद्धि हुई । उन्हें सब लोग मानने लगे, चन्द्रको तरह निर्मल सुयश चारों ओर फैल गया और पुण्य उपार्जनके करने वाले कहलाये ।

कुमार ! सुनो—यही दान दुर्गतिका नाशक है हितका करनेवाला है । इसलिये बुद्धिमानोंको दान देनेमें कभी आगा पीछा नहीं करना चाहिये ।

दानके द्वारा ही गृहस्थता गुणवती कही जाती है, बुद्धिमानोंका प्रयत्न दानके लिये हुआ करता है, दानको छोड़कर कोई उत्तम सुखका देनेवाला भी नहीं है, समझदार ही दान देनेके योग्य होते हैं, दान ही दाताके मनको अपनी ओर खींचता है इसलिये कहना यही है कि सब लोग दान जरुर ही दिया करें ।

त्रिकाल सम्बन्धी तत्वके विवेचन करने वाले धर्मके अधिष्ठाता जिनेन्द्र, अन्तरहित निराम और लोकाग्रवासी सिद्ध तथा महातपस्वी पञ्चाचारके पालनेवाले आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय और साधु इन सबको मैं नमस्कार करता हूं वह इसीलिये कि ये महात्मा लोग अपने२ गुण मुझे वित्तीर्ण करें।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्रमें अकृतपुण्यके दानका वर्णन नाम चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ ॥४॥

पंचम अधिकार

धन्यकुमारके जन्मांतरका वर्णन

द्विचित्वृद्वृत्तपोधर्मानर्घ्यरत्नमदान्सताम् ।
त्रिजगत्स्वामिवन्द्याङ्घ्रीन्वदेऽहं परमेष्ठिनः ॥

दूसरे दिन अकृतपुण्य बची हुई खीर खाकर गायके बच्चोंको चरानेके लिये वनमें चला गया। गरिष्ठ आहारके करनेसे उसे निद्रा आने लगी सो एक वृक्षके नीचे गाढ निद्रा-राक्षसीके वश हो गया।

उधर बच्चे उसे न देखकर स्वयं घर पर आ गये। अकृतपुण्यकी माता बच्चोंको देखकर विचारने लगी कि—क्या कारण है जो बच्चे तो आ गये और पुत्र नहीं आया? पुत्रकी चिन्तासे दुःखी होकर रोने लगी। (बलभद्रसे उसके ढूढ़नेको कहा।)

मृष्टदानाके आग्रहसे बलभद्र अपने नौकरोंको साथ लेकर उसके अन्वेषणको निकला। उधर जब अकृतपुण्यकी निद्रा खुली तो देखता है कि बच्चे नहीं हैं। बड़ा ही व्याकुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होकर घरकी ओर जा रहा था सो दूर ही से बलभद्रको अपने सामने आता हुआ देखकर डरके मारे पर्वत पर चढ़ गया।

बलभद्र उसे देखकर घर लौट आया अकृतपुण्य वहीं गुहाके बाहिर खड़ा हो गया।

उसी गुहामें श्रीसुव्रत मुनिराज—वंदनाके लिये आये हुए श्रावकोंको व्रतका स्वरूप, भेद तथा फल सुना रहे थे जिससे उन्हें धर्म लाभ हो सके। सो बाहर बैठा हुआ अकृतपुण्य भी सश्रद्धा सुन रहा था। उसका सार यह है—

जैसे वृक्षोंका मूल उनकी मजबूतीका कारण होता है उसी तरह सब व्रत और धर्मका मूल उत्तम सम्यग्दर्शन है और वही त्रिभुवन पूज्य हैं। सप्त तत्व, नव पदार्थ देव, गुरु और शास्त्रके शंकादि दोष रहित श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। सप्तव्यसन महा पापके कारण और नरकमें ले जानेवाले हैं इसलिये बुद्धिमानोंको पहले इनका परित्याग करना चाहिये।

मद्य, मांस, मधु (शहद) और पंच उदम्बर फलके छोड़नेको आठ मूल गुण कहते है। ये मूल गुण पालन किये जांय और सातों व्यसन छोड़े जांय यही सब व्रतोंकी मूल दर्शनप्रतिमा हैं।

पांच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत ये बारह व्रत कहे जाते हैं। उनमें विकलत्रय (दो इन्द्री, तीन इन्द्री और चतुररिन्द्री) तथा पंचेन्द्रियोंकी मन, वचन, कायसे जो व्रती पुरुष व्रत लाभके लिये रक्षा करते हैं वह पहला अहिंसाणुव्रत है। यह व्रत सब धर्म तथा व्रतका बीज माना जाता है। देखो! जिन भगवानने जितने व्रत समिति प्रभृतिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालनेका गृहस्थ तथा साधुओंके लिये जो उपदेश दिया है वह केवल इसी एक अहिंसा व्रतके लिये है।

हितरुप, परिमित, मधुर, धर्मका लिये हुये, संदेह रहित, सब जीवोंके सुखके कारण, कोमल, दूसरोंकी निन्दा रहित और विश्वास योग्य सत्य वचन बोलनेको सत्याणुव्रत कहते हैं। यह व्रत भी विद्या, कीर्ति और पुण्यका हेतू है।

अचौर्याणुव्रत उसे कहते हैं जो पड़े हुये, भूले हुये, खोये हुये और कहीं पर रखे हुये दूसरोंके धनका न लेना है। जैसे काले सर्पके पकड़नेमें भय होता है उसी तरह उससे भी धर्मकी रक्षाके लिए पापसे डरनेवाले पुरुषोंको डरना चाहिये। क्योंकि इससे दूसरे लोगोंको बड़ा ही दुःख होता है। इस व्रतका फल सुखोपभोग करना है।

शुद्ध हृदय, कुशील और अपनी ही स्त्रीमें सन्तोष रखनेवाले महात्माओंको अपने शीलव्रतकी रक्षाके लिये संसार भरकी स्त्रियां माता और पुत्रीको तरह देखनी चाहिये यही त्रिभुवनजन महनीय चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

बुद्धिमानोंको लोभ कषाय घटानेके लिये धन-धान्य, सुवर्ण प्रभृति दश प्रकार बाह्य परिग्रहका प्रमाण करना चाहिये। क्योंकि इसके द्वारा आशा दिनोंदिन बढ़ती जाती है और चिन्ता तथा दुःख होता है। यह है बुरा, यह परिग्रह प्रमाण पांचमा अणुव्रत कहा गया है।

दया तथा सन्तोषके लिये योजनादिके प्रमाणसे दश दिशाओंमें जानेकी संख्या करना है उसे दिग्विरति व्रत कहते हैं।

जो निष्प्रयोजन हिंसादि पाप किया जाता है उसके

४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़नेको अनर्थदण्डविरति व्रत कहते हैं। अनर्थदण्ड केवल पापका कारण है। उसके-पापोपदेश, हिंसादान, बुरा चिन्तवन, खोटे शास्त्रोंका सुनना और प्रमादचर्या ये पांच भेद हैं।

अनन्तकायिक कन्दमूलादि, सजीव फल पुष्पादि और आचार (अथाना) ये सब भी निंद्यनीय है अत: बुद्धिमानोंको छोड़ने चाहिये एक वक्त ही सुखके कारण अन्न पानादि योग्य वस्तुओंका और बार२ उपभोगमें आनेवाले वस्त्र, स्त्री प्रभृति उपभोग वस्तुओंका इन्द्रिय रुप चोरोंके वेगको रोक कर शांतिके लिए जो नियम करना है उसे भोगोपभोग नाम व्रत कहते हैं, यह व्रत सब सुख सामग्रीका स्थान है।

शहर गली ग्राम आदिके द्वारा प्रतिदिन दिशाओंमें गमन करनेकी संख्याका नियम करनेको देशवकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

आर्त्त और रौद्रादि दुर्ध्यानके त्यागपूर्वक शांतभावसे प्रात:काल, मध्याह्न काल और सायंकालमें मन, वचन, कायकी शुद्धिके द्वारा अर्हत्सिद्ध जिन वचन, जिन धर्म और साधुओंकी वन्दना करनेको सामायिक व्रत कहते हैं। यह व्रत धर्मका स्थान तथा पापका निर्मूल नाश करनेवाला है।

अष्टमी और चतुर्दशीके दिन सब गृहारम्भ छोड़कर और गुरुके द्वारा उपवासका नियम करके धर्म ध्यानके द्वारा काल बितानेको प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहते हैं। इसका फल स्वर्गादि सुख सामग्रीका मिलना है।

नियम पूर्वक प्रतिदिन पात्र दानके लिए गृह द्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और साक्षात्पात्रके मिलने पर भक्ति दान देना यह वैयावृत्य शिक्षाव्रत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके द्वारा अपना और दूसरोंका हित होता है और यही सब सुखका भी कारण है। इन बारह व्रतोंका निरतिचार यावज्जीवन पालन करना चाहिये। और अन्तिम समयमें मोह परिग्रहादिका परित्याग कर जिन दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

जब आयुके अंतका परिज्ञान हो जाय तप उपवासादिके द्वारा दोनों प्रकारकी सल्लेखना धारण करनी उचित है। क्योंकि इसीके द्वारा तो सब व्रतादि सार्थक होकर स्वर्ग और मुक्तिसुखके कारण होते हैं। इन्हीं बारह व्रतके पालनेको दूसरी प्रतिमा कहते हैं। तीसरी सामायिक प्रतिमा है और चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा है। अप्रासुक और सजीव वल्कल, बीज, फल, पत्र, जल प्रभृति सहित वस्तुओंका करुणा बुद्धिसे जो छोड़ना है उसे पांचवीं सचित्त त्याग प्रतिमा कहते हैं। जिन भगवानने इन्हें सब जीवकी हितकारक बताई है।

खाद्य, स्वाद्य आदि चार प्रकारके आहारका रात्रिमें परित्याग करना जिससे जीव हिंसा न होने पावे और दिनमें ब्रह्मचर्य व्रत रखना (अपनी स्त्रीके साथ भी दिनमें विषय सेवन न करना) यह छठी रात्रि मुक्ति त्याग प्रतिमाका लक्षण हैं। इस प्रतिमाका फल आधे उपवासका होता है।

जो विरक्त महात्मा पुरुष यह समझकर कि स्त्रियां पुरुष के भरे कलशकी तरह अपवित्र हैं, सो उन्हें दूरसे ही छोड़कर सर्वथा ब्रह्मचर्य पालन करते हैं यह सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा मानी गई है। यह प्रतिमा सब सुखोंकी खानि है और परम्परा शिव-सुखकी साधन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो पापसे डर कर सब प्रकारके गृह, वाणिज्य और कृषि आदि आरम्भका अपने हितके लिए मन, वचन कार्य-पूर्वक परित्याग कर देते हैं वह आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमा कही जाती है। इसके द्वारा सब पापाश्रवका निरोध होकर सुख मिलता है।

जो सन्तोष रूप अनुपम खड्गके द्वारा मूर्च्छा राक्षसीका नाम शेष करके त्रिशुद्धि पूर्वक वस्त्रावशेष सब परिग्रहका त्याग कर देते हैं यही नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप उत्तम रत्नोंकी खानि है।

मोक्ष—सुखके चाहनेवाले जो पुरूष—विवाह, खान–पान आदि जितने पापके और जीवोंकी हिंसाके कारण घरके कर्म हैं उनमें मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक सम्मति (सलाह) का परित्याग करते हैं उसे अनुमति–विरति दशवी प्रतिमा कहते हैं। जिनेन्द्रने इसे सब सुखोंको जननी कही है।

जो खण्ड वस्त्रके धारक केवल अपनी शरीर स्थितिके लिये—कृत, कारित और अनुमोदना रहित निर्दोष भिक्षावृत्ति दूसरोंके यहां करने जाते हैं (वह केवल इसी इच्छासे कि तपश्चरण निर्विघ्न संधता जाय) उसे उद्दिष्ट त्याग ग्यारवी प्रतिमा कहते हैं। यह प्रतिमा त्रिभुवन महनीय है।

जो श्रावक लोग इन ग्यारहों प्रतिमाओंका संसारसे उदासीन होनेके लिये पालन करते हैं वे वचन अगोचर सोलह स्वर्ग पर्यन्त सुखोपभोग करके अथवा चक्रवर्ती आदिकी लक्ष्मीके स्वामी होकर अन्तमें नियमसे मोक्ष जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब अकृतपुण्यने इन व्रतोंका स्वरुप सादर सुना तो उसकी इनमें बड़ी ही श्रद्धा और भावना हो गई। अहा! ये व्रत बड़े ही उत्तम और सब सुखके देनेवाले हैं। क्या ही अच्छा हो यदि मुझे जीवन२ में इनका लाभ हो सके? अकृतपुण्यके व्रतादिकी भावना रूप उत्तम परिणामोंके द्वारा जो शुभ कर्मका बन्ध हुआ, उसे स्वर्ग सुखका साधन कहना चाहिये।

जब मुनिराजका धर्मोपदेश हो चुका तब सब श्रावक उन्हें नमस्कार कर और "णमो अरिहंताणं" इस मन्त्रराजके आदि चरणका उच्चारण करते हुये शैल गुहाके बाहर निकले।

अकृतपुण्य भी मन्त्रराजका ध्यान करता हुआ उन लोगों के पीछे२ चलने लगा सो इतनेमें उसके पूर्व जन्मके प्रबल पापके उदयसे उसे एक क्षुधातुर व्याघ्रने आकर खा लिया। अकृतपुण्य मन्त्रका स्मरण करता हुआ ही ससमाधि धराशायी हो गया।

उसने जो पात्र दान प्रभृति शुभ कर्मोंके द्वारा पुण्य संपादन कर रखा था वह इस वक्त काम आ गया सो उसे सौधर्म स्वर्गमें महर्धिक देवका स्थान मिला।

देखो! अकृतपुण्यका भाग्योदय जो कहां तो उसके प्रबल पापका उदय और कहां दुर्लभ पात्रदान? व्रतमें शुभ भावना तथा निधिकी तरह दुर्लभ मन्त्रराजकी अन्त समयमें प्राप्ति, जो स्वर्गके प्रधान कारण समझे जाते हैं। अथवा यों कह दो कि जब शुभ वा अशुभ जैसी गति होना होती है तब उसी तरहकी सामग्री भी मिल जाती है।

उधर अकृतपुण्यकी माता मोहके वश होकर प्रातःकाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही बलभद्रको साथ लेकर उसको ढूंढनेको निकली और धीरे२ उसी पर्वत पर जा पहुचा। वहां जाकर देखती है तो प्यारे पुत्रका आधा खाया हुआ कलेवर पड़ा हुआ है। उसके देखते ही उसकी जो दशा हुई वह अवर्णनीय थी। शोकका वेग उससे न रुका सो कातर स्वरसे मुक्तकण्ठ होकर रोने लगी।

उधर अकृतपुण्य दिव्य उपपाद शय्यामें जन्म लेकर मुहूर्त मात्रमें पूर्ण यौवनसे सुन्दर देव हो गया। वह सोते हुयेकी तरह उपपाद शय्यासे उठा और स्वर्गकी बड़ी भारी सम्पत्ति, देव सुन्दरियां, अपने सामने विनम्र खड़े देवता लोग और रत्नोंके बने हुए उत्तम२ महल इत्यादि विभव देखकर विचार करने लगा—

अहा! मैं कौन हूँ? यह सुखमय स्थान किसका है? ये दिव्य देह कौन हैं? ये सुन्दरियां किनकी हैं? और महलादि बहुतसी विभूति किसकी हैं? ऐसा मेरा कौन भाग्योदय है जो ऐसे सु-स्थानमें लाया गया?

इतना विचार करते ही उसे अवधिज्ञान हो गया जिसके द्वारा पूर्व जन्मकी सब बातें जानी जा सकती हैं। उसके द्वारा यह सब महिमा उसने दानादिके फलकी समझी।

उसे मालूम हुआ कि मेरी माता रो रही है सों पहले ही धर्म लाभके लिये जिन मन्दिरमें गया और वहां उत्तम२ द्रव्योंसे तथा गीत वादित्रादिसे जिनेन्द्रकी महापूजा की जो पुण्यके उपार्जनकी कारण है। बाद स्वर्गीय विभूति स्वीकार कर विमान पर चढ़ा और बहुत सम्पत्तिके साथ माताको समझानेके लिये पृथ्वी पर आया और उसे शोकसे कातर देखकर बोला—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता ! तू नहीं जानती कि मैं तेरा पुत्र हूँ परन्तु पात्र दान और व्रतादिकी शुभ भावनाके फलसे तथा णमोकार मन्त्रके जपनेसे मुझे स्वर्गमें देव पद मिला हैं। इसलिये व्यर्थ ही अब क्यों रो रही है ? इससे तो उल्टा पापका बन्ध होता है।

देख ! स्वर्ग बड़ा ही उत्तम स्थान है, उसमें सदा ही सुख रहता हैं। बहुत उत्तम२ विभूति है जहां दुःखका नाम तक नहीं। वहांके वैभवका वर्णन कुछ तुझे भी सुनाये देता हूँ।

संख्यात और असंख्यात योजन चौड़े पंच वर्णके विमान हैं उनमें मणिमय जिनालय, महल और शैल बने हूये हैं, इच्छाके माफिक दूध देनेवाली गायें हैं, कल्पवृक्ष हैं और रत्न श्रेष्ठ चिन्तामणियां हैं, लावण्य रसको खानि बहुत-सी देव सुन्दरियां हैं तो यों समझ कि उत्तम२ जितनी सुख सामग्री है वह सब एक ही जगह इकठ्ठी कर दी गई है।

जहाँ दुःखी, दीन, रोगी, मूर्ख, निस्तेज, कुरुप और दरिद्री तो स्वप्नमें भी नहीं दीख पड़ते हैं। न दुःखपद ऋतु है, न शीत है, न उष्ण है और न रात्रि दिनका ही भेद है। थोड़े में यों कह दूं कि वहां ऐसी कोई वस्तु नहीं हैं जो दुःख जनक हो, किन्तु सदा सुख जनक साम्यकाल रहता है उसका वर्णन करना कवि लोगोंको भी जरा मुश्किल है इत्यादि सुख पूर्ण सौधर्म स्वर्गमें मैंने बहुत पुण्यसे जन्म लिया है।

यदि मैं यह भी कहू कि मैं सुख समुद्रमें निवास करता हूं तो कुछ अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। इसलिये माता ! अब तुम शोक छोड़ो और मोहरूप शत्रुका नाश कर देव दुर्लभ संयम स्वीकार करो तो बहुत अच्छा हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार माताको समझाकर वह देव अपने स्थान पर चला गया और सुखपूर्वक रहने लगा।

मृष्टदाना अपने भूतपूर्व पुत्रके वचन सुनकर बहुत आश्चर्यान्वित हुई, शोकको हृदयसे हटाया और विरक्त होकर फिर विचारने लगी-देखो ! कितने आश्चर्यकी बात है जो थोडे ही दानादि शुभ कर्म करनेसे आज मेरा पुत्र कितने विभवका भोगनेवाला हुआ है तो कौन बुद्धिमान होगा जो व्रतादि शुभ आचरणोंके द्वारा ऐसे कामोंमें प्रवृत्त न होगा ? क्योंकि बार२ मानव जन्मका मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।

इस विचारके साथ ही मृष्टदानाने सब गृह जंजाल छोड़ा और उसी वक्त अपने कल्याणके लिये जिनेश्वरी प्रव्रज्या (दोक्षा) स्वीकार की।

बिचारी मृष्टदाना थी तो स्त्री ही न ? सो उसे सहसा ज्ञान कैसे हो सकता था ? यही कारण है कि उसने कुछ विचार न कर अज्ञानसे यह निदान कर लिया कि जन्मान्तरमें भो यह मेरा प्रेम-भाजन पुत्र हो और शक्त्यनुसार जोवनपर्यन्त तपश्चरण करने लगो। अन्तमें समाधि आयुका भाग पूर्ण कर उसी स्वर्गमें देवी हुई।

बलभद्रने भी देवको देखकर समझ लिया कि यह सब फल धर्मका है सो वह भी सब कुटुम्बादिकों छोड़ कर दीक्षित हो गया और अन्तमें समाधि पूर्वक जीवन पूर्ण कर तपश्चरणके प्रभावसे उसी जगह देव हुआ।

मुनिराज धन्यकुमारसे कहते हैं—कुमार ! वही बलभद्र सौधर्म स्वर्गमें बहुत काल पर्यन्त अच्छे२ सुख भोगकर अन्तमें वहांसे चल कर तुम्हारा पिता धनपाल हुआ है। मृष्टदानाका जीव तुम्हारी माता है इसीसे उसका तुम्हारे पर

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अधिक प्रेम है। और जो भूतपूर्व वत्सपाल (अकृतपुण्य) का जीव देह हुआ था वही तुम हो।

स्वर्गमें तुमने बहुत काल तक उत्तम२ सुख भोगे हैं और अपनी सुन्दरियोंके साथ२ जिन पूजादि शुभ कर्म भी बहुत किये हैं यही कारण है कि यहां भी तुम्हें वही अपूर्व सुख है और जो बलभद्रके दुष्ट सात पुत्र थे वे ये ही सब देवदत्त प्रभृति सात भाई हैं, सो उसी पूर्व वैरके सम्बन्धसे तुमसे ईर्षा करते हैं, तुम्हें मारना चाहते हैं पैंड२ में जो खजाने मिलते और विघ्न नष्ट होते हैं यह सब पात्रदानका फल है। बस यही तुम्हारी जीवनीका सार है।

कुमार ! यह तो तुमने अच्छी तरह जान लिया कि—तुम्हें जो यह पूर्ण लक्ष्मीका और सौन्दर्यताका लाभ हुआ हैं वह केवल पूर्व जन्मके सुपात्र दान, व्रतमें उत्तम भावना और अर्हद्भगवानके नाम स्मरणका फल है ! इसलिये अब भी तुम्हें उचित है कि उपर्युक्त शुभ कर्मोंके द्वारा धर्मसेवन करो। देखो ! यही धर्म तुम्हारे अभिष्टका देनेवाला है।

अन्तमें कहना यह है कि—

जब तक तुम संसारमें रहो धर्म मत भूलो, धर्मका आश्रय लो, धर्मके द्वारा धर्मके अपूर्व सारको समझो, धर्मके लिए अभिवन्दना करते रहो, धर्मको छोड़कर किसी दूसरेकी सेवा मत करो, धर्मकी मूल करुणा है उसे सदा याद रखो, धर्ममें निश्चलित रहो और धर्म ही से यह प्रार्थना करो कि हे धर्म ! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्रमें धन्यकुमारके जन्मान्तरका वर्णन नाम पांचवां अधिकार समाप्त हुआ ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठा अधिकार

धन्यकुमारके राज्य लाभका वर्णन

त्रिजगन्नाथनाथेभ्यो गरिष्टेभ्यो महागुणैः ।
परमेष्टिभ्य आत्माप्त्यै विश्वार्च्येभ्यो नमोऽन्वहम् ॥

धन्यकुमार, मुनिराजरूपी चन्द्रमाके द्वारा उत्पन्न हुए जन्म जरा और मरणके नाश करनेवाले तथा शिवसुखके कारण धर्मामृतका पान कर बहुत सन्तुष्ट हुआ और साथ ही अपनी बुद्धिको धर्ममें दृढ़ की ।

बाद मुनिराजको नमस्कार कर राजगृह जानेके लिए रवाना हुआ सो धीरे धीरे वहीं पहुँचकर शहरके बाहर एक बगीचा देखा । रास्तेकी थकावट मिटानेके अभिप्रायसे उसके भीतर चला गया । जाकर देखता है तो सारा बगीचा सूखा पड़ा हुआ है । यहां पर प्रसंगानुसार कुछ बगीचेके सम्बन्ध की कथा लिख दी जाती है—

इस बागके मालिकका नाम कुसुमदत्त था । उसका जन्म वैश्य कुलमें हुआ था । यह राजकाज करनेवाले जितने लोग थे उन सबका स्वामी था । उसे सब मानते थे ।

जब उसने देखा कि बाग सारा सूख गया है तो उसे काटना चाहा किन्तु एक दिन उसे अवधि ज्ञानी मुनिराजके दर्शन हो गये । कुसुमदत्तने उन्हें नमस्कार कर पूछा—

स्वामी ! मेरा उपवन सूख गया है सो वह फिर भी कभी फलेगा या नहीं ? उत्तरमें मुनिराजने कहा— वैश्यवर ! कोई पुण्यात्मा महापुरूष दूसरे देशसे आकर इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बागमें प्रवेश करेगा तभी यह फिरसे फल पुष्पादिसे समृद्ध होने लगेगा ।

कुसुमदत्त मुनिराजके कहे अनुसार निश्चय कर तभीसे प्रतीक्षा करने लगा सो आज धन्यकुमारके प्रवेश मात्रसे सूखे सरोवर निर्मल जलसे भर गये और वृक्ष फल पुष्पादिसे नम्र हो गये । सच है पुण्यके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है ।

धन्यकुमार वहीं जिन भगवानका ध्यान कर और सरोवरमें से निर्मल जल पीकर किसी वृक्षके नीचे बैठ गया ।

जब यह हाल कुसुमदत्तने सुना तो उसे झटसे मुनिराजके वचन याद हो आये । मुनिराजके चरणोंको परोक्ष नमस्कार कर बागमें आया और कुमारको बैठा हुआ देखकर उसे नमस्कार कर पूछा—

बुद्धिमान ! क्या मुझे कुछ बातें बताकर कृतार्थ करेंगे ? वे ये हैं—आप कौन हैं ? किस सुकुलमें आपका अवतार हुआ हैं और कहां से आप आ रहे हैं ?

कुमारने कहा—मैं वैश्य पुत्र हूं दूसरे देशोंमें घूमता हुआ इधर आ निकला हूँ और मैं जैन धर्मी हूं ।

कुसुमदत्तने कहा-यदि ऐसा है तों मै भी तो जैनी हूं आपका हमारा धार्मिक सम्बन्ध हैं इसलिये हमारे यहां अतिथि होना स्वीकार करिये ।

धन्यकुमारने यह बात मान ली । बाद कुसुमदत्त, धन्य-कुमारको बड़े सत्कारके साथ घर लिवा ले गया और उसकी प्रेम तथा भक्तिके साथ सेवा करनेके लिये अपनी स्त्रीसे बोला—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह मेरी बहनका पुत्र है इसलिये इसका अतिथि सत्कार अच्छी तरह होना चाहिये। कुसुमदत्तकी स्त्रीने यह समझकर कि यह भावी मेरा जवांई होनेवाला हैं इसलिये धन्यकुमारको स्नान और भोजन वगैरह बड़े प्रेमके साथ करवाया।

कुसुमदत्तको एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था पुष्पावती। सो वह धन्यकुमारके सौन्दर्यको देखकर उस पर मोहित हो गई।

दूसरे दिन उसने यह विचार कर कि देखू यह कितना बुद्धिमान है ? सो उसके विज्ञानादि गुणकी परीक्षाके लिये धन्यकुमारके सामने कुछ सुन्दर२ फूल और सूत रख दिया। कुमार बुद्धिमान तो था ही सो उसने उन फूलोंकी अपनी चातुरीसे बहुत सुन्दर एक माला गूंथ दी।

उन दिनों राजगृहके श्रेणिक महाराज स्वामी थे, उनकी कांता थी चेलनी और गुणवती नामकी पुत्री थी।

पुष्पावती उसी राजकुमारीके लिये प्रतिदिन फूलोंकी माला बनाकर ले जाया करती थी, किन्तु आज वह धन्यकुमारकी बनाई हुई माला लेकर गई।

उसे देखकर राजकुमारी बोली—पुष्पावती ! इतने दिन तू हमारे घर क्यों नहीं आई ! उसने उत्तर दिया–सखि ! क्या करूं मेरे घर पिताजीको वहनका पुत्र आया हुआ है सो उसीकी सेवामें लगी रहती हूं। यही कारण मेरे न आनेका है।

जब राजकुमारीकी आंख उस माला पर पड़ी तो उसने पुष्पावतीसे पूछा—आज तो माला बड़ी ही सुन्दर दिखाई पड़ती हैं, कह तो किसने गूंथी है ? पुष्पावतीने कहा—

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

यह उसी सुचतूर भाग्यशालीका काम है। यह सुनकर राजकुमारी कुछ हंसकर बोली--तू तो बड़ी ही भाग्यवती है जो ऐसे उत्तम वरकी तुझे संगति मिलेगी।

एक दिन धन्यकुमार बाजारमें जा रहा था सो चलतेर अपनी इच्छासे किसी सेठकी दुकान पर बैठ गया उस वक्त सेठ महाशयको व्यापारमें बहुत कुछ फायदा हुआ। इसका कारण उन्होंने बैठे हुए पुण्यात्मा धन्यकुमारको समझकर कहा—

मित्र! मेरी एक सुन्दरी कन्या है उसका विवाह तुम्हारे ही साथ करूंगा। ठीक है–धर्मात्माओंको धर्मके द्वारा सब जगह लाभ हुआ करता है।

दूसरे दिन धन्यकुमार शालिभद्र सेठकी दूकानपर जाकर बैठ गया सो उसे भी व्यापारमें फायदा हुआ। उसने भी इसका कारण धन्यकुमार ही को समझकर कहा—

भद्र! सुभद्रा नामकी एक मेरी बहनकी लड़की है उसका विवाह तुम्हारे साथ किया जावेगा।

वहीं एक राजश्रेष्ठी रहता था। उसका नाम था श्रीकीर्ति। एक दिन उसने सारे शहरमें यह ढिंढोरा पिटवाया कि "जो वैश्यपुत्र तीन काकिणी (दमड़ी) के द्वारा एक ही दिनमें एक हजार दिनार पैदा करके मुझे देगा उसके साथ अपनी धनवती पुत्रीका विवाह कर दूंगा।"

ढिंढोरेको सुनकर उसी वक्त धन्यकुमारने काकिणी (दमड़ी) ले ली। उसके द्वारा उसने माला लटकानेके तृण खरीदे और उन्हें माली लोगोंको देकर बदलेमें कई रंगके उनसे फूल ले लिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन फूलोंको अपने ही हाथोंसे बहुतसी सुन्दर२ मालायें बनाकर उन्हें खेलनेके लिये वनमें जाते हुये राजकुमारोंको दिखलाईं।

देखकर राजकुमारोंने मालाओंका जब मूल्य पूछा तो धन्यकुमारने एक हजार दीनार कहा। जब पुण्यका उदय होता है तब कहीं न कहींसे अपनी इच्छाके अनुसार कारण भी जरूर मिल जाते हैं। ठीक यही धन्यकुमारके लिये भी हूआ, सो उन राजपुत्रोंने एक हजार दीनारें देकर वे सब मालायें खरीद कर लीं।

धन्यकुमारने दीनारें ले जाकर सेठको दे दी। सेठने अपना वचन पूरा करनेके लिये धन्यकुमारके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया।

इस तरह बुद्धिमान धन्यकुमारकी बहुत प्रशंसा सुनकर और गुप्त रीतिसे उसके रुपको देखकर राजकुमारी गुणवती उसपर जी जानसे मुग्ध हो गई। दिनोंदिन उसकी चिन्तासे उसका शरीर भी सूकने लगा।

एक दिन धन्यकुमार, मन्त्री आदि–बड़े२ लोगोंके पुत्रोंके साथ जूवा खेलता था सो उसने उन लोगोंको बातकी बातमें जींतकर अभिमान रहित कर दिये।

वहीं पर श्रेणिक महाराजका पुत्र अभयकुमार भी बैठा हुआ था। उसे अपनी चतुरताका बड़ा घमंड था। उसके साथ कितने और भी धनुर्धारी योद्धा थे। सो वह धन्यकुमारके साथ बाणके द्वारा लक्ष्य वेधनेके लिये झगड़ा करने लगा बाद चन्द्रक यंत्रका वेधना निश्चित किया गया। यद्यपि इसका वेधना हरएकके लिये बड़ा ही कठिन है तो भी कुमारने पुण्य प्रभावसे उसे वेधकर देखते२ राजकुमारको हरा दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ अतः सब मिलकर उसके साथ बैर करने लगे और किसी तरह उसके मारने का उपाय सोचने लगे। बिचारा कुमार धर्मात्मा और सरल हृदय था, सो उसे उन लोगों का कपटभाव मालुम न हुआ।

उधर श्रेणिकको पुत्रीके दिनों दिन दुबली होनेका जब कारण मालूम हुआ तो विचार कर अपने पुत्र वगैरहसे पूछा—देखो! यह कुमार रूपवान और गुणी है। इसके साथ गुणवतीका विवाह किया जाना उचित है या नहीं ?

उनमेंसे अभयकुमार आगे होकर ईर्षासे कहने लगा—वह विदेशी है, उसके कुल तथा जातिका कुछ ठिकाना नहीं! क्या मालूम अच्छे हैं या बुरे ? इसलिये कन्याका देना मेरी समझके अनुसार सर्वथा बुरा है।

अभयकुमारका कहना सुनकर श्रेणिकने खुले शब्दोंमें कहा—

देखो! गुणवतीके दिलमें तो उसींकी चाह हैं और इसीसे वह दिनोंदिन कामाग्निसे जली जा रही है। यदि ऐसी हालतमें भी उसका विवाह न किया जाय तो उसके जीनेका क्या उपाय है ?

अभयकुमारसे आखिर में न रहा गया सो उसने साफर कह ही तो दिया—

पिताजी! इसका यह उपाय हो सकता है कि जबतक वह जीता रहेगा तभी तक गुणवतीका कामजनित दुःख भी बढ़ेगा ही। इसलिये....सुनकर श्रेणिकने घृणाके साथ कहा—वह बिचारा निरपराध है उसको मैं कैसे मरवा सकता हूँ? यह न्याय नहीं किन्तु अन्याय हैं।

अभयकुमारने फिर कहा—अच्छा, आप कुछ न करें,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम हो इसके मारनेका कोई उपाय कर इसका अभिमान दूर करेंगे ।

उत्तरमें श्रेणिकने किसी तरह पुत्रको समझानेके लिये कहा—वह क्या उपाय है जिससे इसे मार सकोगे ? राजकुमार बोला—

शहरके बाहर राक्षसोंका एक स्थान है ! पहले उसमें कितने ही लोग राक्षसके हाथसे मारे गये हैं इसलिये "जो धीर पुण्यवान इस स्थानके भीतर जायगा उसके लिये आधा राज्य तथा पुत्री दी जायेगी ।"

शहर भरमें ऐसा ढिंढोरा पिटवाना चाहिये सो उसे सुनकर वह नियमसे अभिमानमें आकर उस मकानके भीतर जायगा सो ही मारा जावेगा ।

पुत्रके विचारके माफिक श्रेणिकने ढिंढोरा पिटवा दिया । धन्यकुमारने उसे सुना फिर भला उस मकानके भीतर गये बिना उसे कैसे चैन पड़ सकता था ? उसे बहुत लोगोंने मना भी किया परन्तु उसने एककी न सुनी और दोपहरके वक्त खेलता हुआ बिना आयासके जैसे अपने घरमें जाना होता है उसी तरह निडर होकर राक्षस भवनमें चला गया ।

धन्यकुमारको देखते ही राक्षस उल्टा शांत हो गया और सामने आकर उसे नमस्कार किया । बाद सत्कारपूर्वक सुन्दर आसन पर बैठाकर विनयसे बोला—

विभो ! आप मुझे अपना दास समझें । मैंने इतने काल-तक खजांची होकर आपके इतने बड़े भारी मकानकी और धनकी रक्षा की । अब आप आ गये हैं सो अपना धन सम्हाल लीजिये, यह आपहीके पुण्यका कमाया हैं ।

ऐसा कहकर सब धन धन्यकुमारके सुपुर्द कर दिया । और जब आप मुझे याद करेंगे तब हाजिर हो सकूंगा, मैं आपका दास हूं इतना कहकर अन्तर्हित हो गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन्यकुमारने शुभ ध्यानपूर्वक रात्रि वहीं बिताई। सच कहा है—पुण्यवानोंको सब जगह लाभ ही हुआ करता है।

उधर जब उन कन्याओंको धन्यकुमारके राक्षस भवनमें जानेका हाल मिला तो सबोंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जो गति धन्यकुमारकी होगी वही हमें भी मंजुर है।

रात्रि पूर्ण हुई, सबेरेका उजेला चमकने लगा। इतनेमें धन्यकुमार भी प्रातःकालीन सामायिकादि क्रिया करके बहुत खुशीके साथ मकानसे बाहर निकलकर शहर की ओर आने लगा।

उसे धन लेकर शहरकी ओर आते हुये देखकर राजा वगेरहको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने दिलमें विचारने लगे कि यह साधारण पुरूष नहीं है किन्तु नर-केशरी है। इसे कोई नहीं जीत सकता। यह बड़ा भारी पुण्य पुरूष हैं।

यही समझकर श्रेणिक और अभयकुमार आदि आधी दूर तक उसके सामने गये और उसे बहुत सम्मानपूर्वक लाये। बाद-राजमहलमें लिवा जाकर भूषण वस्त्रादिसे उसका सत्कार किया और पूछा—

प्रेमपात्र ! कहो तो तुम किस उत्तम कुलरूप आकाशके विशाल चन्द्रमा हो और अकेले ही किस कामके लिये यहां आये हुये हो ?

उत्तरमें धन्यकुमारने कहा—मैं उज्जयिनीमें रहता हूँ और वैश्यकुलमें मेरा जन्म हुआ है तीर्थयात्रा करता२ इधर आ गया हूं। यह सुनकर श्रेणिक बहुत खुश हुये और उसी समय बहुत धन खर्च कर अपने ही मकानमें विवाह मण्डप तैयार करवाया और बहुत कुछ समारोहके साथ गुणवती आदि सोलह कन्याओंका धन्यकुमारके साथ विधि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वक विवाह कर सानन्द उसे अपना आधा राज्य दे दिया। धन्यकुमारको मनुष्य और देव आदि सब कोई मानने लगे।

कुछ दिनों बाद धन्यकुमारने वैश्य आदि सभी जातिके मनुष्योंसे युक्त एक सुन्दर नगर बसाया और वहांका राजा भी आप ही हुआ। बड़े२ राजपुत्र उसके चरणोंकी सेवा करने लगे।

धन्यकुमार सुखपूर्वक राज्य पालन करने लगा, कुमार समय२ पर जिनधर्मकी बड़ी प्रभावना किया करता था।

इस प्रकार धन्यकुमारका दर्शन उज्जयिनीमें राजा मन्त्री आदि सभी लोगोंको बड़ा ही सुखकर होता था। परन्तु खेद है कि उसके माता पिता तो दिन रात दिलके भीतर ही भीतर इसके वियोगसे जल रहे थे।

अब कुछ धन्यकुमारके माता पिताका हाल सुनिये—

जब धन्यकुमार वहांसे चला आया उसी दिन घरके रक्षक देवता लोगोंने उसके माता पिता और भाईयोंको निकाल घर बाहिर कर दिये। वे सब वहांसे निकलकर फिर अपने पुराने घर पर गये।

इस वक्त इनकी हालत बड़ी बुरी थी।। ये ऐसे मालूम देते थे जैसे देवाग्निसे जले हुए वृक्ष हों, बड़े ही शोकसे पीड़ित तथा दुःखके मारे विमूढ़ हो रहे थे।

उस वक्त शहरके लोग बड़े ही आश्चर्यके साथ परस्पर में कहते थे कि देखो! ये लोग कितने निर्दयी और पापी हैं—इनका हृदय वज्रकी तरह बहुत कठोर है जो ऐसे सुपुत्रके चले जानेपर भी अभीतक जीते हैं अथवा यों कह लो कि दुःखी पुरुषोंके पास मृत्यु भी आकर नहीं फटकती है क्योंकि उनके बड़ा ही खोटे कर्मोंका उदय बना रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन लोगोंके अन्याय करनेसे थोड़े ही दिनोमें जितना पुराना और नवीन धन था वह सब जाता रहा और कुपुत्रोंके तीव्र पापसे इनकी यहां तक दशा बिगड़ी कि खाने और पेट भरने तककी मुश्किल पड़ने लगी।

तब धनपाल किसी कामके बहानेसे राजगृह निवासी अपनी बहनके लड़के (जो अधिक धनी था) शालिभद्रके पास गया। कहना चाहिये कि—अब फिर उसका भाग्य फिरा।

वहां जाकर धन्यकुमारके मकानके नीचे बैठकर लोगोंसे शालिभद्रका मकान पूछने लगा। मकानके उपर ही धन्य-कुमार बैठा हुआ था सो उसने देख कर उसी वक्त पहचान लिया कि ये मेरे पिता हैं। झटसे नीचे उतरा और पास आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा।

विचारा पिता उस समय फटे टूटे वस्त्र पहरे हुये था, गरीबके समान जान पड़ता था, सेठ होनेपर भी दरिद्री और उसमें कुछ भेद न था।

राज कर्मचारी और पुरवासी लोग यह घटना देखकर बड़ा काश्चर्य करने लगे।

धनपाल यह घटना देखकर बोला—नराधीश! तुम पुण्यात्मा हो, तुम्हारा अखण्ड प्रताप है इसलिये सुखपूर्वक बहुत कालतक पृथ्वीका पालन करो। मैं एक दरिद्री वैश्य हूँ और तुम पृथ्वीके मालिक राजा हो इसलिये उल्टा मूझे नमस्कार करना चाहिये न कि तुम मुझे करो। यह सुनकर धन्यकुमार बोला—

आप ही नमस्कारके पात्र हैं। कारण आप मेरे पूज्य पिता हैं और मैं आपका छोटा पुत्र हूं। यह सुनते ही धन-पालके नेत्रोंसे मारे आनन्दके आंसू गिरने लगे। पुत्रको छातीसे लगाकर वह रोने लगा। धन्यकुमारको भी यही दशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी। उन्हें मन्त्री आदि लोगोंने बहुत कुछ समझाया तब भी प्रेमके आंसुका वेग उनसे रुक न सका। बाद उनको किसी तरह राजमहलमें ले गये।

धन्यकुमारने पिताकी वस्त्राभरण और भोजनादिसे सेवा कर भाईयोंका चरित्र, अपने आनेका हाल और राज्यके मिलने आदिकी सब कुछ कथा कह सुनायी। बाद–माता और भाई बन्धुओंकी कुशल पूछी।

उत्तरमें धनपाल बोला—वे सब बड़े ही मन्दभागी हैं, इस समय उनका जीवन बुरी दशामें है, पीछे पुराने ही घरमें रहने लगे हैं और पास कुछ भी पैसा नहीं है जो उनके द्वारा निर्वाह कर सके। जब तुम वहांसे चले आये उसी दिन रातके वक्त घरके रक्षक देवता लोगोंनें हम लोगोंको निकाल दिये थे इसीसे फिर पुराने घरका आश्रय लेना पड़ा।

हम लोगोंमें एक तुम ही पुण्यवान थे सो तुम्हारे निकलते ही सब धन भी तुम्हारे साथ२ बिदा हो गया। आज मैं अपनेको बडा ही भाग्यशाली समझता हूं जो बहुत दिनके बाद फिर तुम्हें देख पाया।

पिताके वचन सुनते ही धन्यकुमारने अपने नौकरोंको खूब वस्त्र वगैरह देकर माता भाई आदिको लिवा लाने लिये भेजे।

जब प्रभावती आदिको धन्यकुमारके समाचार मिले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई, वे सब उसी समय वाहनों पर सवार होकर राजगृह आये। उनके आनेका हाल सुनकर कुमार अपने साथ और भी कितनेक राजाओंको लेकर भक्तिपूर्वक उनके लिवा लानेके लिये आधी दूर तक सामने आया।

रास्तेमें अपनी माताको आती हुई देखकर बहुत विनयके

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

साथ धन्यकुमारने मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। माता भी पुत्रको देखते ही बहुत कुछ खुश हुई और उसे गले लगाकर शुभाशीर्वाद देने लगी।

भाई लोग धन्यकुमारको देखकर हृदयमें बहुत शर्मिन्दा हुये। यहां तक कि मुंह तक ऊंचा करना उन्हें मुश्किल हो गया। धन्यकुमार उनकी यह हालत देखकर बोला—

भाईयो! यह आपकी ही दया है जो मुझे इतनी राज्य-विभूति मिली है। आप लोग सन्देह छोड़ें और हृदयका खटका निकालकर शुद्ध चित्त हो जावें। क्योंकि कर्मके उदयसे अच्छा बुरा तो हुआ ही करता है।

धन्यकुमारका सीधापन देखकर उन्होंने उसकी बहुत प्रशंसा की और अपने अपराधकी क्षमा कराकर अपनेको धिक्कार देने लगे। बाद-धन्यकुमार अपने कुटुम्बियोंको लेकर बहुत ठाटबाटके साथ शहरमें होकर अपने मकान पर आया। वहां पर उन सबका स्नान भोजन वस्त्र गहने आदि से बहुत सत्कार किया गया।

बाद धन्यकुमारने गृहस्थ धर्मके निर्वाहके लिये उन्हें सुवर्ण, रत्न, वाहन और ग्राम आदि सभी कुछ उचित वस्तु खुशीके साथ भेंट दी जिससे वे अपना निर्वाह कर सकें।

उपसंहार—

राज्य आदि विभवका मिलना, देवता और मनुष्योंके द्वारा सत्कारका होना और बन्धु लोगोंके साथ२ बहुत कुछ सुखके कारण उत्तम२ भोगोंका भोगना यह सब पुण्यकी महिमा है। इसलिए जो सुचतुर हैं उन्हें जरूर ही पुण्यकर्म करना चाहिये।

देखो! धर्म गुणोंका खजाना और सबका भला करनेवाला है। बुद्धिमान लोग धर्मकी सेवा करते हैं। धर्मके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा शुभ गति होती है, धर्म मोक्षका कारण है इसलिये नमस्कारके योग्य है, धर्मको छोड़कर कोई उत्तम वस्तु नहीं दे सकता, धर्मका बीज सम्यग्दर्शन है, धर्ममें मैं भी अपने चित्तको लगाता हूं, हे धर्म ! अब तुझे भी उचित है कि संसारमें गिरनेसे मुझे बचावे ।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्रमें
धन्यकुमारके राज्यलाभका वर्णन नाम छट्ठा
अधिकार समाप्त हुआ ॥६॥

सातवां अधिकार

धन्यकुमारका सर्वार्थसिद्धिमें गमन

वीतरागजगन्नाथांस्त्रिजगद्भव्यवन्दितान् ।
विश्वप्राणिहितावन्दे शिरसा परमेष्ठिनः ॥

एक दिन धन्यकुमारके मनमें यह विचार उठा कि किसी तरह धन सफल करना चाहिये सो उसने बड़े२ उंचे जिन मन्दिर बनवाना आरम्भ किया और उनमें विराजमान करने के लिये सुवर्ण और रत्नोंकी सुन्दर प्रतिमायें बनवाई । चारों संघको बुलवाकर बहुत कुछ उत्सवके साथ प्रतिष्ठा करवाई। खुब धन खर्च किया । ये सब काम केवल अपने भलेके लिये किये थे ।

धन्यकुमार प्रतिदिन अपने घरके जिन चैत्यालयमें बहुत कुछ भक्ति तथा महोत्सवके साथ पूजन किया करता था और दूसरोंको भी करनेके लिए प्रेरणा करता था । क्योंकि जिन पूजा सब सुखकी देनेवाली है ।

जब मुनियोंके आहारका वक्त आता तब स्वयं अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घरके आगे खड़ा होकर मुनियोंकी बाट देखा करता और पात्रका समागम होनेपर विधिपूर्वक बडे विनय भावसे पवित्र आहार देता । भव्य पुरुषोंके साथ सदा निर्ग्रन्थ साधुओंकी भक्ति सेवा पूजा वन्दना किया करता । उनके मुखसे श्रावक धर्म तथा मुनि धर्मका स्वरूप और तत्वोंका व्याख्यान सुनता क्योंकि उसे विरागता बडी ही प्रिय थी ।

जिस दिन अष्टमी तथा चतुर्दशी होती उस दिन सब राज काज छोडकर नियम पूर्वक उपवास किया करता क्योंकि उसे अपने पाप कर्मके नाश करनेकी बहुत चाह थी । मुनिकी तरह निराकुल होकर तीनों काल समता भावपूर्वक शुद्ध सामायिक करता था ।

उसने शंकादि दोषोंको अपने आत्मासे हटाकर और साथ हो निःशंकितादि आठ गुणोंको धारण कर सम्यग्दर्शनकी निर्मलता अच्छी तरह कर ली थी क्योंकि यही शुद्धि शिवसुखकी कारण है ।

यह बात सब कोई मानेगे कि ज्ञान, तीन लोकके पदार्थका प्रगट करनेके लिए दीपक है सो धन्यकुमार भी अपने अज्ञानके हटानेके लिए बड़े२ बुद्धिमानोंके साथ ज्ञानका अभ्यास सदा किया करता था ।

अपने योग्य श्रावकके व्रतोंका निरतिचार हर वक्त पालन करता था । दिलमें धर्मके तथा धर्मके चिह्नोंका मनन किया करता था और सुखके लिये हरएकको धर्मका उपदेश दिया करता था ।

अपने शरीरके द्वारा जहां तक उससे बनता था धर्मपालन करनेमें किसी तरहकी कमी नहीं रखता था । थोड़ेमें यों कह लीजिये कि धन्यकुमार मन, वचन, काय और कृतकारित अनुमोदनासे धर्ममय हो गया था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह यह बात अच्छी तरह जानता था कि धर्मसे धन मिलता है, धनसे काम सुख मिलता है और कामके छोड़ने से अनन्त सुखका समुद्र मोक्ष मिलता है । इसलिये अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये मन, वचन, कायसे धर्मका सेवन करने में लगा रहता था ।

वह धर्म की ही शक्ति समझनी चाहिये जो धन्यकुमार को सब सुखकी कारण राज्य-लक्ष्मी मिली थी वह हरएक तरहके उत्तम२ सुखके अनुभवसे सुख-समुद्रमें यहांतक डूबा था कि समय कितना बीत गया उसकी भी उसे खबर न रही ।

एक दिन धन्यकुमारने अपनी सुभद्रा नाम स्त्रीका मुख कुछ मलिन देखकर उससे पूछा—

प्रिये ! तुम क्या यह बात कह सकोगी कि आज तुम्हारा मुख किस लिये मलिन है । जाना जाता है तुम्हें किसी शोकने धर दबाया है ।

वह बोली—स्वामी ! मेरा भाई शालिभद्र बहुत दिनोंसे धनकुटुम्ब शरीर और सुख सामग्रीसे उदासीन हो गया है और सदा वैराग्यका चिन्तवन पूर्वक घरहींमें तपका अभ्यास किया करता है परन्तु आज यह मालूम हुआ कि वह जिन दीक्षा लेना चाहता है । विभो ! उसे मैं बड़ी ही प्रेमकी निगाहसे देखा करती हूँ सो उसका भावी वियोग सुनकर बड़ी दु:खिनी हो रही हूँ ।

नाथ ! आपके राज्यमें मुझे सब तरहका सुख मिलने पर भी केवल भाईका विरह दु:ख ही दु:खिनी कर रहा है । यही मेरे शोकका हेतु है । यह सुनकर धन्यकुमार बोला— बस ! यही दु:खका कारण है ? अभी ही जाकर मैं उन्हें सुमधुर वचनोंसे समझाये देता हूँ जिससे हम सबको सुख होगा, तुम शोक छोड़ो ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

उसे यों समझाकर धन्यकुमार उसी वक्त अपने सालेके घर गया और उसे उदासीन देखकर बोला—प्रियवर ! आजकल आप हमारे घरपर क्यों नहीं आते हो ? उत्तरमें शालीभद्रने कहा—मान्य मैं क्या करु संयम (मुनिपद) बड़ा ही कठिन है सो उसीकी सिद्धिके लिये तपश्चरणका अभ्यास यहीं रहकर किया करता हूं इसीसे आपके घर न आ सका।

धन्यकुमारने कहा—अच्छा, यदि तुम्हें दीक्षा ही लेना है तो जल्दी करो । यहां तपका अभ्यास करनेसे क्या लाभ हो सकेगा ? अरे ! पहिले भी वृषभ आदि बहुतसे महात्मा वर्षादि योगके धारण करनेवाले हुये हैं और तपके द्वारा मोक्ष गये हैं, क्या उन्होंने भी घरमें अभ्यास किया था ? नहीं ! किन्तु मेघ वगैरह कुछ भी थोड़ासा वैराग्यका कारण देखकर असंख्य वर्षों तक भोगा हुआ भी राज्य सुख देखते२ निडर होकर छोड़ दिया और तपके द्वारा कर्मोंका नाश कर मोक्षमें चले गये । वास्तवमें उन्हें ही पुरुषोत्तम कहना चाहिये । तुम डरपोक जान पड़ते हो इसीलिये तपका अभ्यास करते हो ।

देखो ! मैं अभी ही इस कठिन दीक्षाको भी बिना अभ्यासही के ग्रहण किये लेता हूं । तुम नहीं जानते कि संसारका नाश करनेवाला पापी काल न मालुम कब तुम्हें वा मुझे अथवा औरोंको लिवा ले जानेके लिये चला आवेगा ?

देखो ! काल गर्भमें रहनेवाले, जवान, दीन, दुःखी सुखी, धनी और निर्धन आदि किसीकी कुछ परवाह न कर सभी को अपना शिकार बना लेता है । इसलिये भाग्यवश जबतक वह न आने पावे उसके पहिले ही जिन दीक्षा लेकर हितके मार्गमें लग जाना चाहिये ।

क्योंकि जबतक जहां राक्षसोंका शरीर पर अधिकार नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जमा हैं तबतकही मोक्ष सुखका उपाय भी बन सकेगा और जहां बुढ़ापा शरीरमें घुस गया फिर तप और व्रतका पालन कोसों दूर हो जाता है।

ईसलिये जो लोग संसारसे छूटना चाहते हैं उन्हें जबतक इन्द्रियां अपना२ काम अच्छी तरह कर सकतीं हैं तभीतक संयम ग्रहण कर लेना उचित है। क्योंकि जिन लोगोंकी इन्द्रियां ठण्डो पड़ जाती हैं वे फिर संयमके योग्य नहीं हो सकते और विना संयमके तप व्रत वगैरह सार्थक नहीं कहे जा सकते।

मनुष्य तो यह विचार करता रहता है कि आज वा, कल अथवा कुछ दिनों बाद तप और व्रत धारण करुंगा और काल है सो पहले ही आ धमकता हैं। यह जीवन चारेके अग्रभाग पर ठहरी हुई ओसकी बिन्दुकी तरह जल्दी नाश होनेवाला है और युवावस्था वादलकी तरह देखते२ नाश हो जायगी।

लक्ष्मी वेश्याकी तरह चपल और बुरी है। चोर, शत्रु और राजा वगैरह सदा इसमें छीननेकी फिराकमें रहते हैं, दु:खकी देनेवाली है और दु:खहीके द्वारा कमाई जाती है। राज्य धूलके समान बुरा, सब पापका कारण, चंचल और हजारों चिन्ताओंसे भरा हुआ है। कौन बुद्धिमान ऐसे राज्य का पालन कर सुखी होगा? स्त्रियां मोहकी बेलि, सब अनर्थ अन्यायको कारण और दुष्ट होती हैं।

घरमें रहना पाप और आरम्भका स्थान है। शरीर रुधिरादि सात धातुओंसे भरा, अपवित्र दुर्गंधित और इन्द्रिय-रूपी चोरोंके रहनेका घर है इसे कौन भला चाहनेवाला भोगोंके द्वारा पुष्ट करना चाहेगा?

भोग हर वक्त भले ही भोगे जांय, परन्तु हैं असन्तोष और पापहीके कारण। अरे! ये होते तो स्त्रीके अपवित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरहीसे न? फिर क्यों कर बुद्धिमान इनके द्वारा सुखकी चाह कर सकते हैं? दुःखका समुद्र और विषम यह संसार अनंत है, चार गतियोंमें भ्रमण करना इसका सार है, कोई कहे तो बुद्धिमानोंको प्रेम करनेके लिये इसमें क्या उत्तम वस्तु है?

इत्यादि हितकर और वैराग्यके वचनों द्वारा धन्यकुमार ने शालीभद्रके रोम२ में वैराग्य ठसाकर उसे मुनिपदके लिये उत्तेजित कर दिया और उससे भी कहीं बढ़ा चढ़ा स्वयं वैरागी होकर जल्दी ही अपने घर पर गया।

शालीभद्र धन्यकुमारका बड़ा भारी साहस देखकर सब धन और घर बार छोड़ कर उसके पीछे हो घरसे निकला।

धन्यकुमारने घर पर आकर राज्यभार तो अपने बड़े पुत्र धनपालको सौंपा और आप श्रेणिक, माता पिता भाई और बन्धुओंसे क्षमा कराकर शालीभद्र तथा और भी कितने ही लोगोंके साथ श्री वर्द्धमान भगवानके समवशरणमें गया।

वहां त्रिभुवनके स्वामी जगद्गुरु श्री महावीर भगवानकी तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्तिपूर्वक बिनीत मस्तकसे नमस्कार किया और उत्तम२ द्रव्योंके द्वारा उनकी पूजा कर स्तुति करना आरम्भ की—

विभो! आप संसारके स्वामी हैं, सबका हित करनेवाले हैं, बड़े भारी गुरू हैं, विना कारण जगतके बन्धु हैं और आप ही जीवोंकी संसारके दुःखोंसे छुड़ानेवाले हैं।

नाथ! आज आपके चरणकमलोंके दर्शन कर मेरे नेत्र सफल हुये और हाथ पूजन करनेसे।

स्वामी! आपके दर्शनके लिये यहां आनेसे पांव भी कृतार्थ हुये और नमस्कार करनेसे जीवन, जन्म तथा मस्तक पावन हुआ। पूज्यपाद! आज मेरी जिह्वा आपके गुणोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गान कर सार्थक हुई और गुणोंका ध्यान, चिन्तवन करनेसे मन पवित्र हुआ।

अनाथबन्धो ! आज यह शरीर भी सफल है जो आपके चरणोंकी इसने सेवा की और हम भी धन्य हैं जो आपकी भक्तिसे सुगन्धित हुये।

भगवन् ! यद्यपि यह संसार अपार है परन्तु आपके आश्रय करनेवालोंको तो चुल्लुभर मालुम देता है, क्योंकि आप इसके जहाज हैं न ?

नाथ ! आप अनन्त गुणके स्थान हैं, आपकी स्तुति गणधर सरीखे बड़े२ महामुनि भी नहीं कर सकते तो उनके सामने हम लोग किस गिनतीमें हैं जो थोड़ेसे अक्षरोंका ज्ञान रखते हैं। इसलिये—हे देव ! आपको नमस्कार है, आपके अनन्त गुणोंको नमस्कार है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयके देनेवाले को नमस्कार है।

त्रिभो ! आपकी स्तुति और नमस्कारका प्रतिफल तपचरणके साथ२ रत्नत्रय चाहते हैं क्या आप दया करेंगे ? अथवा हमें आप अपने ही समान बना लीजिये फिर सम्यक्त्वादि तो सहज ही हो जावेंगे। बस यही हमारा इच्छित है और इसीके लिये आपके सामने हाथ जोड़े हुये खड़े है।

बाद भगवानके कहे अनुसार धन्यकुमार और शालीभद्र आदि सब महापुरुषोंने शाश्वत् मोक्षसुखके लिये बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रहका तथा मोहका मन वचन कायकी शुद्धिसे परित्याग किया और मोक्षकी माता जिन-दीक्षा स्वीकार कर अट्ठाईस मूलगुण धारण किये।

तदनन्तर पापकर्मको निर्मूल नाश करनेके लिये अपनी शक्ति प्रगट कर बारह प्रकार तप करने लगे। आलस छोड़कर द्वादशांग शास्त्र पढ़ने लगे जो अज्ञान दूर कर केवलज्ञानका कारण हैं। कभी पर्वतोंकी गुफाओंमें, कभी सूने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घरोंमें, कभी मसानमें, कभी निर्जन जगहमें और कभी भयंकर वन वगैरहमें अपने ध्यानाध्ययनकी सिद्धिके लिए सिंहकी तरह सदा निडर और सावधान रहते थे। तरह२ के आसनों के द्वारा तप करते थे ।

धर्मप्रचारके लिये हरेक देश पुर ग्राम दुर्ग और पर्वतादिमें घूमते थे। अटवी आदिमें चलते२ जहां सूर्य अस्त हो जाता था वहीं पर ध्यान करने लग जाते क्योंकि जीवोंकी दया करना तो मुनियोंका प्रधान कर्तव्य होता है न ?

जब चौमासा आता, प्रचण्ड वायु चलने लगती, चारों ओर भयंकर ही भयंकरसा दिखाई देता और सर्प, बीछू, मच्छर आदि जीवोंकी बहुतायत हो जाती तो भी आप शरीरसे मोह छोड़कर वृक्षके नीचे ध्यानपूर्वक महायोग धारण करते थे।

ठण्डके दिनोंमें शीतसे जले हुए वृक्षोंकी तरह होकर मैदानमें अथवा नदी, तालाबके किनारों पर रहते और ध्यानाध्ययन करते ।

गरमीके दिनोंमें सूर्यकी तेज किरणोंसे गरम हुई और जलती हुई अग्निकी तरह बहुत दुःसह गरम२ शिलाओं पर ध्यानरूप अमृतके पानसे आत्मानन्दमें लीन होकर सूर्यकी ओर मुंह करके कायोत्सर्ग ध्यान धरते वह केवल कर्मोंके नाश करनेकी इच्छासे ।

इसी तरह शास्त्रानुसार बहुतसे काय क्लेश, अनन्त सुखमय मोक्षकी इच्छासे वे हरवक्त किया करते थे। क्षुधा, तृषादि महा कठिन बाईस परीषह तथा हिंसक जीवोंके द्वारा दिये हुये घोरसे घोर दुःख समता भावसे सहते । आर्त रौद्रादि खोटे ध्यानोंको आत्मासे हटाकर धर्म और शुक्ल ध्यानका गुहादिमें बैठकर ध्यान करते । इन्द्रियोंको अपने वश करते। महाव्रतकी शुद्धिके २५ भावनाओंका वैराग्य बढ़ानेके लियेबारह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुप्रेक्षाओंका धर्मवृद्धिके लियेदशलक्षण धर्मका सम्यग्दर्शन निर्मलताके लिये तत्वोंका, और मन तथा पांचों इन्द्रियोंके रोकनेके लिये जैन शास्त्रोंका निर्विकल्प चित्तसे मनन करते थे। इत्यादि कठिन२ योग और तप इन साधुओंने जीवनभर पालन किया।

अन्तमें धन्यकुमार महामुनिने चार प्रकार आहार तथा शरीरादिमें मोह छोड़कर अकेले ही निर्जन वनमें पर्वतकी तरह निश्चल खड़े होकर विधिपूर्वक सल्लेखना स्वीकार की।

पहले ही क्षमादि अच्छे२ गुणोंके द्वारा कषायोंको घटाकर शरीर सल्लेखना करने लगे सो थोड़े दिनोंमें उपवासादिके द्वारा सारा शरीर सुखाकर क्षुधादि परीषह जीती।

धन्यकुमार मुनिके मुख और होट आदि सभी सूख गये थे तो भी उनमें धैर्य और मनस्विता थी। शरीरमें केवल चमड़ा और हड्डियां मात्र रह गई थीं तब भीं उनका महाबल और क्षमा-शीलपना बड़ा ही आश्चर्य उत्पन्नकरता था।

कभी बहुत सावधानीसे चार आराधनाओंका आराधन करते, कभी पंचपरमेष्ठी पदका और कभी परमात्मा का ध्यान करते। अन्तमें सब सालम्ब ध्यान छोड़कर निरालम्ब ध्यान, करना आरम्भ किया।

इसी तरह शुभ ध्यान, शुभ योग और शुभ लेश्याओंके द्वारा नव महीने तक सल्लेखनाका पालन किया और अन्तमें *प्रायोपगमन मरणके द्वारा ध्यान और समाधिपूर्वक प्राण छोड़कर तप तथा धर्मके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धिमें उपपाद शय्यामें जन्म लेकर अन्तमूहूर्त्त मात्रमें अतिशय सुन्दर शरीरके धारक अहमिन्द्र हो गये।

वह अहमिन्द्रदेव और जो अहमिन्द्रदेव थे उनके साथ भी अनेक तरहकी धार्मिक कथा करता और कभी स्फटिकमणिके बने हुये स्वभाव सुन्दर अपने महलोंमें अथवा नन्दन वनमें

*प्रायोपगमन मरणके वक्त किसीसे अपना वैयावृत्य नहीं कराया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेला करता। तेतीस हजार वर्ष बाद कण्ठमें झरता हुआ अमृत उसका आहार है। और साढे सोलह वर्ष बाद उसे श्वासोच्छ्वास लेना पड़ता है।

इसी तरह उत्तम२ सुखका उपभोग करता हुआ वह अहमिन्द्र सदा सुख-समुद्रमें डुबा रहता है। आयुकी मर्यादा पूरी होनेपर यही राज्यकुलमें जन्म लेकर मोक्ष जायगा।

धन्यकुमार मुनिके अलावा शालीभद्रादि जितने ही मुनि थे वे भी जीवनभर तपश्चरण कर और अन्तमें समाधि पूर्वक प्राणोंका परित्याग कर अपने२ तपश्चरण के अनुसारसौ धर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक गये।

उपसंहार—

देखो! दुःखी, दरिद्री अकृतपुण्य केवल दानकी भावना तथा थोड़ेसे दानके फलसे धन्यकुमार हुआ और फिर तपश्चरणके द्वारा सर्वार्थसिद्धिमें गया इसलिये गृहस्थो! इस उदाहरणसे तुम्हें भी दान देनेकी शिक्षा लेनी चाहिये।

गुणके खजाने धन्यकुमार मुनिराज धन्य हैं उनके गुणोंकी मैं स्तुति करता हूं, और उन्हींके बताये अनुसार मोक्षमार्गका सेवन करना चाहता हूं, उनके लिये मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूं, उन्हींके द्वारा स्तुति होनेकी आशा है इसीलिये उनके गुणोंका ध्यानकर अपने मनको लगाता हूँ। हे धन्य! क्या मुझे भी अपनी तरह धन्य न करोगे?

धन्यकुमार मुनिका यह निर्मल चरित्र है इसे जो लोग भक्तिसे पढेंगे, धर्मसभाओंमें बांचेंगे अथवा सुनेंगे वे लोग उत्तम परिणामोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले धर्मके फलसे स्वर्गसुख भोगकर बादमें तपश्चरणके द्वारा रत्नत्रय युक्त हो नियमसे मोक्ष-सुखके भोगनेवाले होंगे।

अन्तमें मेरी निर्दोष और गुणज्ञ विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे लोग थोड़े पढ़े हुये मुझ सकलकीर्तिके द्वारा केवल भक्तिसे बनाये हुए इस चरित्रका संशोधन करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारे संसारके हित करनेवाले अर्हंत, अनन्त सिद्ध पंचाचारके पालनेवाले आचार्य, अपने शिष्यलोगोंको पढ़ानेवाले उपाध्याय और स्वर्ग अथवा मोक्षके लिये उपाय करनेवाले तथा कठिन२ तपश्चरण करनेवाले साधु लोग मुझे मोक्षका कारण मंगल प्रदान करें मैं उनकी स्तुति वंदना करता हूँ। इस चरित्रके सब श्लोक मिलाकर साडे आठसौ होते हैं।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्रमें
धन्यकुमारका सर्वार्थसिद्धिमें गमन वर्णन नाम
सातवां अधिकार समाप्त हुआ ॥७॥

अनुवादका परिचय

श्री वैश्यवंश–अवतंस ! जिनेन्द्रभक्त !
शान्त–स्वभाव ! सब दोष कलंक मुक्त !
हीरादिचन्द्र शुभ नाम विराजमान् ।
हे पूज्यपाद ! तुव पाद करों प्रणाम ॥१॥
हा तात ! पाप विधिका नहिं है ठिकाना ।
जो आपके अब सुदर्शनका न होना ॥
हा ! मन्दभाग्य मुझको दुःखमें डुबोके ।
मा* भी हुई सुपथ गामिनि आप होके ॥२॥
आधार तात ! नहिं है अब कोई मेरा ।
हा ! और संसृति–निवास बची घनेरा ॥
कैसे दुःखी उदय जीवन पूर्ण होगा ?
फल कर्मके 'उदय' को किसने न भोगा ॥३॥

जिनेन्द्रसे विनय

हे देव ! देख जगमें अवलम्ब हीन ।
आलम्ब देकर करो अब कर्महीन ॥
जो दुःख–नीर–निधिमें अब छोड़ दोगे ।
तो दासका कठिन शाप विभो ! गहोगे ? ॥४॥

अनुवादक—उदयलाल कासलीवाल (बड़नगर)

*मा शब्द माता और लक्ष्मीका वाचक है। हमारी माताका नाम भी लक्ष्मी था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजन कथा विधानादि

सिद्धचक्र विधान (कपडा बाईन्डींग)	२८-००
नित्य पूजा गुटका	८-००
नित्य नियम पूजा (दैनिक पाठ पूजा)	२०-००
चतुर्विंशति पूजन वृन्दावन	१०-००
चौषठ ऋद्धि विधान	८-००
सोलहकारण विधान	१०-००
दशलक्षण विधान	५-००
सुगंधदशमी पूजा विधान	३-५०
रविवार व्रत कथा विधान सहित	३-५०
दशलक्षण धर्म दिपक	६-००
जैन व्रत कथा संग्रह	१२-००
नंदीश्वर विधान	१५-००
शांतिनाथ विधान	५-००
रत्नत्रय विधान ५-०० रक्षाबंधन कथा	२-५०
आराधना कथा प्रथम	११-००
,, ,, द्वितीय–१०-००, तृतीय	१० -००
नवीन महावीर किर्तन	६५-००
धन्यकुमार चरित्र	६-००
नवग्रह विधान	३-५०
सच्चा जिनवाणी	६४-००
बृहद जिनवाणी संग्रह	५०-००

दिगम्बर जैन पुस्तकालय
गांधीचौक, सूरत–३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org